शम्भू नाथ सरकार
बनाम
पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

(Sambhu Nath Sarkar
Vs.
State of West Bengal and others)

(19 अप्रैल, 1973)

(कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति जे० एम० शैलत, न्या० के० एस० हेगडे, ए० एन० रे, पी० जगनमोहन रेड्डी, एच० आर० खन्ना और ए० के० मुखर्जी)

आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम, 1971 (मेण्टिनेन्स ऑफ इण्टरनल सिक्यूरिटि ऐक्ट, 1971) (1971 का 26)—धारा 17क—विधि-मान्यता—संविधान के अनुच्छेद 22(7) (क) में अधिकथित अपेक्षाओं की पूर्ति न होने के कारण उक्त धारा अविधिमान्य है—अनुच्छेद 22(7) (क) में 'किन परि-स्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में' पद में प्रयुक्त 'तथा' शब्द का प्रयोग साधारण संयोजक (कन्जंक्टिव) के रूप में हुआ है न कि वियोजक (डिस्जंक्टिव) के रूप में—उक्त अनुच्छेद के अधीन निर्मित विधि में 'परिस्थितियों' एवं 'प्रकारों' दोनों का ही विहित किया जाना अनिवार्य है और निरोध के समय दोनों का ही विद्यमान होना भी अनिवार्य है—ऐसी विधि में सप्तम् अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 3 में विनिर्दिष्ट शीर्षों एवं विषयों के प्रगणन मात्र से अनुच्छेद 22(7) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं होती है।

संविधान—अनुच्छेद 22(7) (क)—निर्वचन—'किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में' पद में 'तथा' शब्द का प्रयोग साधारण संयोजक (कन्जंक्टिव) के रूप में हुआ है—वियोजक (डिस्जंक्टिव) के रूप में नहीं—सम्बन्धित विधि में 'परिस्थितियों' एवं 'प्रकारों', दोनों का ही उल्लेख आवश्यक है—उक्त खण्ड के अधीन विधान एक विशिष्ट प्रकार का विधान है, अतः संसद् के लिए यह अनिवार्य है कि वह ऐसे विधान में 'परिस्थितियों' एवं 'प्रकारों' दोनों को ही सोच-समझ कर विनिर्दिष्ट करे—संविधान की सम्बन्धित सूचियों की सुसंगत प्रविष्टियों में वर्णित शीर्षों एवं विषयों के अक्षरशः उद्धरण मात्र से उक्त खण्ड की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं होती है।

—अनुच्छेद 137 और 141—उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने पूर्ववर्ती निर्णयों का पुनर्विलोकन—दैहिक स्वाधीनता (पर्सनल लिबर्टी) के अधिकार से सम्बन्धित मामला पुनर्विलोकन के लिए एक उपयुक्त मामला है।

पद्धति और प्रक्रिया— 'निर्णीतानुसरण का सिद्धान्त'—गलत निर्णय का अनुसरण करके न्याय की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

राष्ट्रपति ने 3-12-1971 को आपात् घोषणा की। इसी समय संसद् ने भारत रक्षा अधिनियम अधिनियमित किया। उसकी धारा 6 द्वारा आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम, 1971 में कुछ संशोधन कर दिए गए। परिणामस्वरूप, आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने के अधिनियम में एक नई धारा 17क जोड़ दी गई। इसी धारा के अधीन पिटीशनर को निरुद्ध कर लिया गया। इस निरोध की विधिमान्यता पर पिटीशनर ने आपत्ति की है। उसका कहना है कि सम्बन्धित अधिकारी को इस बाबत अनियंत्रित शक्ति प्रदान की गई है कि वह एक ही प्रकार के मामलों में सम्बन्धित व्यक्ति के विरुद्ध चाहे तो अधिनियम की धारा 17क के अधीन (जो अत्यन्त कठोर उपबन्ध है) कार्यवाही करे या चाहे उसी अधिनियम की अन्य धाराओं (जो सामान्य हैं) के अधीन। इस दृष्टि से अधिनियम अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है और वह विभेदकारी है। उसका कहना यह भी था कि धारा 17क अनुच्छेद 22(7)(क) की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करती है क्योंकि खण्ड (7)(क) के अधीन असाधारण परिस्थितियों और मामलों के लिए ही निवारक-निरोध सम्बन्धी विधि बनाई जा सकती है, साधारण परिस्थितियों या मामलों के लिए नहीं। साधारण दशाओं में तो खण्ड (4) ही लागू होगा; यह कि प्रविष्टियों में उल्लिखित विषयों एवं शीर्षों के उद्धरण मात्र से खण्ड (7) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं होती है; यह कि खण्ड (7) खण्ड (4) का अपवाद है, उससे स्वतन्त्र नहीं। विरोधी पक्ष ने पिटीशनर की सभी दलीलों का विरोध किया है। उसका कहना है कि गोपालन वाले मामले में दिया गया विनिश्चय काफी समय से मान्य रहा है, अतः उसे उलटा नहीं जाना चाहिए। पिटीशन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित— जहां तक कि अधिनियम के विभेदकारी होने का प्रश्न है तो यह स्पष्ट है कि धारा 10 'इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबन्धित के सिवाय' पद से प्रारम्भ होती है। इन शब्दों का अर्थ है कि वह केवल ऐसे मामलों को ही लागू होगी जिन की बाबत अधिनियम में कोई अभिव्यक्त रूप से उपबन्ध नहीं किया गया है, अर्थात्, वह धारा ऐसे मामलों को लागू नहीं होगी जिन्हें धारा 17 और धारा 17क लागू होती है, जो अधिनियम में 'अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित' मामलों के बारे में हैं। दूसरी बात यह है कि धारा 17क(1) में प्रयुक्त 'निरुद्ध किया जा सकता है' पद उस पद के बाद में आने वाले शब्दों के साथ जुड़ा हुआ है अर्थात् सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना, और 'निम्नलिखित प्रकारों के मामलों या निम्नलिखित परिस्थितियों में से किसी परिस्थिति में* * * *'। 'निरुद्ध किया जा सकता है' पद निस्सन्देह प्राधिकारी को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना ही किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध कर सकता है। किन्तु यह कालावधि किसी भी दशा में, उसमें उपवर्णित मामलों में, दो वर्ष से अधिक की न होगी। इसलिए 'निरुद्ध किया जा सकता है' पद ऐसा पद है जो सम्बन्धित प्राधिकारी को बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना उस उपबन्ध में उपबन्धित कालावधि से अधिक के लिए निरुद्ध करने की शक्ति प्रदान करता है। किन्तु इस पद के द्वारा प्राधिकारी को यह विकल्प प्रदान नहीं किया गया है कि वह धारा 17क लागू करे या न करे। यदि यह मान भी लें कि धारा 17क और धारा 10 के साथ-साथ प्रवर्तन से अधिनियम के कार्यान्वयन में कोई अन्तर उत्पन्न हो सकता है तो भी यह अन्तर धारा 17क(2) के इन उपबन्धों के कारण विभेद की कोटि

में नहीं आ सकता है कि जिन व्यक्तियों के मामले को धारा 10 की उपधारा (1) लागू होती है उनके मामलों में उक्त धारा की उपधारा को इस उपान्तरण के साथ पढ़ा जाएगा कि 'तीस दिन के अन्दर' पद के स्थान पर 'दो वर्ष के अवसान से किसी भी समय पूर्व किन्तु किसी भी दशा में ऐसे अवसान से तीन मास पूर्व की कालावधि के पश्चात् नहीं' पद रख दिया जाएगा। यदि यह दृष्टिकोण अपनाया जाए तो उक्त विभेद के परिणामस्वरूप अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण या उसके अनुसार विभेद का प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा। इस निष्कर्ष की पुष्टि धारा 17क(1) के आरम्भ में ही प्रयुक्त विफलीकरण खण्ड और धारा 10 में विशेषता दर्शित करने वाला 'इस अधिनियम द्वारा अन्यथा उपबन्धित के सिवाय' पद के संयुक्त प्रभाव से हो जाती है। (पैरा 15)

उच्चतम न्यायालय अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों पर पुनर्विचार तभी करता है जब कि उसका यह समाधान हो जाता है कि उसने पूर्व विनिश्चय में गलती की है अथवा यह कि ऐसा विनिश्चय सामान्य सार्वजनिक हित पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है अथवा वह 'हमारे संविधान के विधिक दर्शन के प्रतिकूल है' और यह कि संविधान सम्बन्धी विषयों में उच्चतम न्यायालय ऐसा पुनर्विचार अधिक तत्परता से करेगा और विधि की अन्य शाखाओं के सम्बन्ध में इतनी तत्परता नहीं बरती जाएगी। वस्तुतः 'निर्णीतानुसरण' के सिद्धांत की व्यापकता को प्रस्तुत मामले में लागू नहीं किया जा सकता है और यदि कोई स्पष्ट विवशता सामने आ जाए तो पूर्वतर विनिश्चयों को उलट ही दिया जाना चाहिए। (पैरा 27)

जब कि खण्ड (4) का उपखण्ड (क) संसद् और विधानमण्डल दोनों ही के द्वारा अधिनियमित विधान को लागू होता है, उपखण्ड (ख) केवल ऐसी विधियों को ही लागू होता है जिसे संसद् ने अधिनियमित किया हो। उपखण्ड (ख) द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि उपखण्ड (क) के अधीन संसद् की शक्ति पर लगाया गया निर्बन्धन खण्ड (7)(क) और (ख) के अधीन संसद् द्वारा अधिनियमित विधि को लागू न होगा। बोर्ड के हस्तक्षेप की व्यवस्था कर के अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए विधि बनाने या बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना ही अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए विधि बनाने की बाबत यदि संसद् की वैकल्पिक (आलटरनेटिव) शक्ति का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है तो खण्ड (4)(क) खण्ड (7)(क) के साथ पठित खण्ड (4)(ख) से पूर्णतः बेअसर हो जाता है। निश्चय ही उपबन्धों का अर्थान्वियन इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए कि किसी उपबन्ध के एक भाग का अर्थान्वियन करते हुए उसी उपबन्ध का अन्य भाग बेअसर हो जाए। संविधान निर्माताओं का आशय निरोध सम्बन्धी ऐसी विधियों में—चाहे उसे संसद् ने बनाया हो या चाहे राज्य विधानमण्डल ने—जिनमें तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध की व्यवस्था की गई हो, निष्पक्ष और स्वतन्त्र निकाय के हस्तक्षेप के लिए उपबन्ध करना आवश्यक रहा है। खण्ड (4) और खण्ड (7) के विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि संविधान निर्माताओं ने यह उपबन्ध किया है कि—(क) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली विधि में तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध उपबन्धित नहीं किया जाना चाहिए; (ख) किन्तु फिर भी यदि ऐसी कोई विधि तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए उपबन्ध करती है तो उसमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए; और (ग) ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है जब कि कुछ मामलों में संसद् को ही ऐसी विधि बनाने की शक्ति दी जानी चाहिए जिसमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना भी अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए उपबन्ध किया जाए। खण्ड (4)

और खण्ड (7) की भाषा पर यदि सम्यक्तः विचार किया जाए तो संसद् की स्वतंत्र या वैकल्पिक शक्ति का सिद्धांत उचित साबित नहीं होता है और उसे प्रथमतः इस कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उक्त दोनों खण्डों में प्रयुक्त भाषा के अर्थान्वियन से ऐसा कोई आशय प्रकट नहीं होता है और द्वितीयतः इसलिए कि यदि अर्थान्वियन यह किया जाए कि खण्ड (7)(क) और खण्ड (4)(क) को एक साथ पढ़ने से खण्ड (7)(क) खण्ड (4)(क) का अपवाद साबित होता है, तो दोनों ही खण्डों के बीच सामंजस्य स्थापित हो जाता है और उक्त दोनों खण्डों के अधिनियमन का सही आशय भी स्पष्ट हो जाता है। (पैरा 32)

खण्ड (7)(क) के अधीन विधि संसद् ही बना सकती है और ऐसी विधि में 'किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में' किसी व्यक्ति को खण्ड (4) द्वारा यथाविहित तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है, उनका उल्लेख होना चाहिए और उसमें बोर्ड की राय प्राप्त करने की अपेक्षा से भी बचा जा सकता है। यदि संसद् ऐसी विधि में सम्बन्धित दो प्रविष्टियों में उल्लिखित विषयों और शीर्षों को प्रगणित कर देती है तो वह ऐसी विधि द्वारा सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप से छुटकारा नहीं पा सकती है और यदि ऐसा किया जाता है तो खण्ड (4)(क) में उपबन्धित रक्षोपाय पूर्णतः निष्फल हो जाएगा। यदि आशय ऐसा होता तो खण्ड (7)(क) में केवल यही कहा गया होता कि खण्ड (4)(क) की कोई भी बात संसद् द्वारा निर्मित ऐसी विधि को लागू न होगी जिसमें दो प्रविष्टियों में उल्लिखित सभी विषयों या उनमें से एक या अधिक का उल्लेख कर दिया गया हो। किन्तु संविधान-निर्माताओं ने सम्बन्धित विधि में परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों का उल्लेख खण्ड (7)(क) द्वारा अनिवार्य किया है। ऐसी अभिव्यक्ति के विद्यमान होने से और इस बाबत उपबन्ध होने से कि ऐसी विधि संसद् ही बना सकती है, यही प्रकट होता है कि खण्ड (7)(क) खण्ड (4)(क) का अपवाद है। यदि प्रविष्टियों में के शीर्षों के उल्लेख मात्र से विहित परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों का उल्लेख हो जाता है तो संसद् का संबंध ऐसी विधि में अत्यन्त सामान्य से लेकर अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों एवं मामलों के प्रकारों से, न कि केवल उन में से ऐसी कुछ परिस्थितियों एवं प्रकारों से, जिनमें खण्ड (4)(क) द्वारा अपेक्षित व्यवहार से भिन्न व्यवहार अपेक्षित है, हो जाता है। ऐसी दशा में खण्ड (4)(क) निष्फल हो जाएगा क्योंकि संसद् प्रविष्टियों में उल्लिखित शीर्षों या विषयों का अक्षरशः उल्लेख करके खण्ड (4)(क) की अपेक्षाओं से छुटकारा पा सकती है। क्या खण्ड (4)(क) के अधिनियमन का यह आशय हो सकता है? ऐसा आशय कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि गंभीरतम कार्यपालिक कार्यवाही द्वारा तीन मास से, जो सामान्यतया पर्याप्त कालावधि मानी गई है, अधिक लम्बी कालावधि के लिए भी वैयक्तिक स्वाधीनता से वंचन के लिए खण्ड (4)(क) के अधीन निष्पक्ष निकाय के हस्तक्षेप का रक्षोपाय अपेक्षित है। (पैरा 33)

उक्त प्रविष्टियों और खण्ड (7)(क) के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं। प्रविष्टियों का उद्देश्य उन शीर्षों का उल्लेख करना है जिनकी बाबत विधान किया जा सकता है और खण्ड (7)(क) का उद्देश्य साधारण और असाधारण परिस्थितियों के बीच अन्तर स्थापित करना है और उसका (खण्ड का) उद्देश्य खण्ड (4)(क) द्वारा उपबन्धित आज्ञापक रक्षोपाय का असाधारण परिस्थितियों में लागू न होने देना भी है। प्रविष्टियों में से विधान के विषयों या शीर्षों के उद्धरण मात्र से ऐसी परिस्थितियों या मामलों के प्रकार, जिन्हें उक्त स्वतन्त्र निकाय के हस्तक्षेप का

रक्षोपाय लागू नहीं होता है, विहित नहीं हो जाते हैं, खण्ड (7)(क) के अधीन वाली विधि, यदि उसकी तुलना खण्ड (4)(क) के अधीन निर्मित विधि से की जाए, अधिक कठोर विधि है और उसके बारे में उपधारणा यह की जानी चाहिए कि ऐसी कठोर विधि अभिव्यक्त रूप से और विहित निबन्धनों के अनुसार असाधारण परिस्थितियों में और असाधारण क्रियाकलापों को ही लागू होगी। (पैरा 35)

खण्ड (7)(क) संसद् से यह अपेक्षा करता है कि वह सोच-विचार कर विशिष्ट प्रकार की उन स्थितियों और मामलों के उन प्रकारों को विहित करे जिनमें कि कठोर विधि अपेक्षित है और जिनमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप से मुक्ति इस आधार पर प्राप्त की जा सकती है कि ऐसा हस्तक्षेप ऐसी असाधारण परिस्थितियों में और खतरनाक व्यक्तियों के मामलों में बहुत बोझिल या अहितकर होगा। यदि खण्ड (4)(क) और खण्ड (7)(क) को एक साथ पढ़ा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सलाहकार बोर्ड जैसे स्वतन्त्र निकाय के हस्तक्षेप की बाबत उपबन्ध करने में संविधान-निर्माताओं का आशय यह था कि उक्त खण्ड उस अधिकारिता के विरुद्ध एक आवश्यक रक्षोपाय है जो प्रधानत: सन्देह और आशंकाओं पर आधारित है और जिसकी उपेक्षा खण्ड (7)(क) के अधीन बनाई गई विधि में विनिर्दिष्टत: विहित असाधारण परिस्थितियों और खतरनाक व्यक्तियों और उनके आशंकित क्रियाकलापों के सम्बन्ध में ही की जा सकती है। इस दृष्टिकोण से उक्त खण्ड में प्रयुक्त 'और' शब्द का अर्थ यही लगाया जाना चाहिए कि उसका प्रयोग एक साधारण संयोजक के रूप में किया गया है। उक्त खण्ड के संदर्भ से भी यह प्रकट नहीं होता है कि उसका प्रयोग किसी विपरीत अर्थ में किया गया है। वस्तुत: 'और' शब्द का प्रयोग उसी रूप में किया गया है जिसमें कि सामान्यत: उसे समझा जाता है और उसके अधीन संसद् से यह अपेक्षा की गई है कि वह उन सभी परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों (दोनों का ही) का उल्लेख करे, जिनमें कि बोर्ड द्वारा विचारण से छूट पाई जा सकती हो। (पैरा 36)

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) द्वारा एक नियम प्रतिपादित किया गया है जिसका खण्ड (4)(क) के साथ पठित खण्ड (7)(क) एक अपवाद है। इस दृष्टिकोण से खण्ड (7)(क) का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो वह निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की संसद् की शक्ति इस प्रकार निर्बन्धित करता है कि वह खण्ड (4)(क) में अधिकथित नियम की उपेक्षा कर सकती है और सलाहकार बोर्ड को मामले निर्देशित करने से मुक्ति पा सकती है, बशर्ते कि वह सम्बन्धित विधि में उन परिस्थितियों का, जिनमें और मामलों के उन प्रकार या प्रकारों का उल्लेख कर दे, जिनमें खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के उपबन्धों के अनुसार किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना भी तीन मास की कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है। (पैरा 39)

उलट दिया गया निर्णय

		पैरा
[1950]	1950 एस० सी० आर० 88 :	
	गोपालन बनाम मद्रास राज्य (Gopalan *Vs.* State of Madras)	7

अवलम्बित निर्णय

[1967] (1967) 2 एस० सी० आर० 170 :
लीगल रिमेम्बरेंसर, पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम कलकत्ता नगर निगम (Legal Remembrancer, State of West Bengal *Vs.* Corporation of Calcutta) ; 27

[1955] (1955) 2 एस० सी० आर० 603 :
दि बंगाल इम्मूनिटी कम्पनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य (The Bengal Immunity Company Ltd. *Vs.* State of Bihar). 27

निर्दिष्ट निर्णय

[1970] (1970) 3 एस० सी० आर० 530 :
आर० सी० कूपर बनाम भारत संघ (R. C. Cooper *Vs.* Union of India) ; 40

[1967] (1967) 3 एस० सी० आर० 399 :
नार्दर्न इण्डिया कैटरर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम पंजाब (Northern India Caterers Pvt. Ltd *Vs.* Panjab) ; 14

[1967] (1967) 2 एस० सी० आर० 454 :
मध्य प्रदेश राज्य बनाम ठाकुर भरत सिंह (State of Madhya Pradesh *Vs.* Thakur Bharat Singh) ; 14

[1967] (1967) 2 एस० सी० आर० 703 :
एस० जी० जयसिंघानी बनाम भारत संघ (S. G. Jaisinghani *Vs.* Union of India) ; 14

[1967] (1967) 3 एस० सी० आर० 525 :
सतवंत सिंह साहनी बनाम डी० रामरतनम, सहायक पासपोर्ट अधिकारी, भारत सरकार, नई दिल्ली (Satwant Singh Sawhney *Vs.* D. Ramratanam, Assistant Passport Officer, Government of India, New Delhi); 14

[1967] (1967) 1 एस० सी० आर० 433 :
लखनपाल बनाम भारत संघ (Lakhanpal *Vs.* Union of India) ; 18

[1954] आई० एल० आर० (1954) 1 कलकत्ता :
सितेन्द्र नारायण रे चौधरी बनाम मुख्य सचिव, पश्चिमी बंगाल सरकार (Sitendra Narain Ray Choudhary *Vs.* Chief Secretary, Government of West Bengal); 25

[1917] ए० आई० आर० (1917) ए० सी० 260-275 :
रैक्स बनाम हैलिडे (Rex *Vs.* Halliday) ; 22

1973(4) eILR(PAT) SC 1

आरम्भिक अधिकारिता : 1972 की संख्या 266 वाला रिट पिटीशन।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन हैबियस कार्पस रिट के जारी किए जाने के लिए पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से	सर्वश्री हरनारायण गुप्त, दिलीप सिन्हा, पुलक रंजन मण्डल और रतनीन दास
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री होरेन डे, भारत के अटर्नी जनरल और सर्वश्री डी० एन० मुखर्जी और जी० एस० चैटर्जी
भारत के महान्यायवादी की ओर से	सर्वश्री हीरेन डे, बी० सेन और एस० पी० नायर
मध्यक्षेपी सं० 1 और 4 की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग और एस० सी० अग्रवाल
मध्यक्षेपी संख्या 2 की ओर से	सर्वश्री आर० के० गर्ग और के० आर० नम्बियार
मध्यक्षेपी संख्या 3 की ओर से	श्री प्रद्योज कुमार चक्रवर्ती

न्यायालय का निर्णय कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति जे० एम० शैलत ने दिया।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति शैलत—

सभी तात्विक समयों पर पिटीशनर पश्चिमी बंगाल सरकार के अधीन नियोजित था और हुगली जिला के कलक्टर के यहां तैनात था। 29 जनवरी, 1972 को उसे आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम (1971 का 26), की धारा 3(1) के साथ पठित धारा 3(2) के अधीन हुगली के जिलाधीश के 25 जनवरी, 1972 के आदेश से निरुद्ध कर लिया गया था। उक्त आदेश 'लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी रीति में कार्य करने से उसे रोकने की दृष्टि से' किया गया था। उसी दिन उसे निरोध-आधार बता दिए गए। उक्त निरोध-आधार उन कतिपय घटनाओं से सम्बन्धित थे जिनका 25 अप्रैल, 1971, 14 सितम्बर, 1971, 12 अक्तूबर, 1971 और 19 जनवरी, 1972 को घटना अभिकथित है।

2. उक्त आदेश के निकाले जाने से पूर्व पिटीशनर सहित छः अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को, जो हुगली के कलक्टर के कार्यालय में नियोजित थे, दण्ड संहिता की धारा 143/506 के अधीन 14 सितम्बर, 1971 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर उक्त घटनाओं में से प्रथम दो में अभिकथित उनके भाग लेने के लिए अभियोजित किया गया था। 29 मार्च, 1972 को मजिस्ट्रेट ने उन्हें 10 मार्च, 1972 की पुलिस की अन्तिम रिपोर्ट के आधार पर उन्मोचित कर दिया। उक्त निरोध-आदेश के अनुसरण में पिटीशनर को हुगली जेल में अब तक निरुद्ध रखा गया है।

3. तत्पश्चात् पिटीशनर की मां ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 495 के अधीन कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक आवेदन (1972 का 318) दाखिल किया। उक्त आवेदन में पिटीशनर के निरोध पर केवल दो आधारों पर आपत्ति की गई थी, अर्थात्, आधार

अस्पष्ट हैं और वे विसंगत हैं। 29 मई, 1972 को उच्च न्यायालय ने उक्त आवेदन खारिज कर दिया। प्रस्तुत पिटीशन और भी व्यापक है क्योंकि उसमें उक्त अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों की विधिमान्यता पर भी आपत्ति की गई है।

4. जो अभिलेख हमारे समक्ष मौजूद है उससे यह दर्शित होता है कि अधिनियम के अधीन अपेक्षित सम्पूर्ण कार्यवाही कर दी गई है और उपबन्धों का यथावश्यक अनुपालन भी अधिनियम द्वारा विहित रीति और समय में कर दिया गया है। अतः उक्त आधार पर पिटीशनर के निरोध पर कोई भी आपत्ति विधिमान्यतः नहीं की जा सकती है। पिटीशनर का मामला अधिनियम के अधीन गठित सलाहकार बोर्ड को निर्देशित कर दिया गया। बोर्ड ने अपनी रिपोर्ट में यह लिखा कि पिटीशनर के निरुद्ध किए जाने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं। 15 अप्रैल, 1972 को राज्य सरकार ने, जब उसे उक्त रिपोर्ट प्राप्त हो गई, धारा 12(1) के अधीन निरोध-आदेश पुष्ट कर दिया और यह निदेश किया कि निरोध, निरोध की तारीख से, तीन वर्ष तक चालू बना रहेगा। उक्त पुष्टि का आदेश निरुद्ध व्यक्ति को सम्यक् रूप से संसूचित कर दिया गया। तत्पश्चात् पिटीशनर ने राज्य सरकार से अपना अभ्यावेदन 10 अगस्त, 1972 को अर्थात्, बोर्ड को अपने मामले के निर्देशित किए जाने और उक्त आदेश के पुष्ट किए जाने के कई महीने पश्चात् किया। उक्त अभ्यावेदन पर राज्य सरकार ने इस कारण विचार नहीं किया कि उस समय तक प्रस्तुत रिट पिटीशन फाइल किया जा चुका था और इस न्यायालय के समक्ष वह विचाराधीन था।

5. पिटीशन में निरोध-आदेश पर आपत्ति निम्नलिखित आधारों पर की गई है—

"(1) निरोध-आधार अस्पष्ट हैं;

(2) निरोध-आधारों और लोक व्यवस्था बनाए रखने के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है।

(3) निरोध-आधारों की रचना यन्त्रवत् रूप में की गई है और निरोध प्राधिकारी ने उसमें अपना मस्तिष्क नहीं लगाया है।

(4) आदेश असद्भावपूर्ण है और उसका प्रयोजन गौण है, अर्थात्, उसका उद्देश्य राज्य समन्वय समिति, जिसका कि पिटीशनर एक सदस्य है, के सक्रिय सदस्यों को अपना शिकार बनाना है।

(5) भारत रक्षा अधिनियम (1971 का 42) की धारा 6(6)(घ) और (ङ) द्वारा अधिनियम की धारा 13 को संशोधित करके बारह मास की कालावधि के स्थान पर तीन वर्ष की कालावधि रख कर भारतीय नागरिकों और विदेशियों के साथ समान बर्ताव किया गया है और इससे अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण हुआ है; और

(6) उक्त पुष्टिकरण आदेश, जिसके द्वारा तीन वर्ष का निरोध आदिष्ट किया गया है, अनुच्छेद 22 की दृष्टि से शक्तिबाह्य है।"

जिला मजिस्ट्रेट ने अपने प्रतिशपथपत्र में उक्त आदेश की विधिमान्यता पर की गई सभी आपत्तियों को निराधार बताया है।

6. 24 अक्तूबर, 1972 को पिटीशनर ने आपत्ति के अतिरिक्त आधार प्रस्तुत करने के लिए आवेदन किया और जब उसे अपना पिटीशन तदनुसार संशोधित करने की इजाजत मिल गई तो उसने अपना पिटीशन संशोधित कर दिया। संक्षेप में, आपत्ति के अतिरिक्त आधारों द्वारा अधिनियम की धारा 3, 5, 8, 11, 12 और 13 की विधिमान्यता पर आपत्ति इस आधार पर की गई है की वे अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती हैं और संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 21 और 22 का अतिक्रमण करती हैं, क्योंकि उक्त धाराओं द्वारा निरुद्धव्यक्ति के अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए किसी निष्पक्ष प्राधिकारी की व्यवस्था नहीं की गई है और जिस सामग्री के आधार पर आदेश किया गया है उस पर आपत्ति करने के लिए अवसर उपबन्धित नहीं किया गया है और साथ ही सलाहकार बोर्ड के समक्ष सम्बन्धित प्राधिकारी द्वारा रखी जाने वाली सामग्री और सरकार द्वारा निरोध की पुष्टि से पूर्व ऐसी सामग्री पर आधारित बोर्ड की रिपोर्ट पर आपत्ति करने के लिए भी कोई अवसर उपबन्धित नहीं किया गया है।

7. उक्त मामले की सुनवाई सांविधानिक न्यायपीठ के समक्ष 17 नवम्बर, 1972 को आरम्भ हुई और सुनवाई उस दिन के अलावा 21 नवम्बर, 1972 और 1 दिसम्बर, 1972 को भी की गई। ऐसा लगता है कि उसी समय अधिनियम की धारा 17क की जिसके द्वारा यह व्यवस्था की गई गई है कि सलाहकार बोर्ड से परामर्श किए बिना ही 21 मास तक व्यक्ति को निरोध में रखा जा सकता है, विधिमान्यता पर भी आपत्ति की गई। परिणामस्वरूप न्यायपीठ ने यह विचार किया कि प्रस्तुत मामले में **गोपालन बनाम मद्रास राज्य** [1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय पर पुनर्विचार करना अपेक्षित है। अतः सांविधानिक न्यायपीठ ने यह विचार किया कि मामला बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित किया जाए। परिणामस्वरूप मामला हमारे समक्ष निपटारे के लिए पेश हुआ।

8. अधिनियम 2 जुलाई, 1971 को पारित किया गया था। उसके विस्तृत नाम से यह दर्शित होता है कि वह आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने के प्रयोजनार्थ कुछ मामलों में निरोध का तथा उससे सम्बद्ध विषयों का उपबन्ध करने के लिए अधिनियमित किया गया है। धारा 3(1)(क) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को किसी व्यक्ति के विरुद्ध निरोध-आदेश करने की उस दशा में शक्ति प्रदान करती है जब कि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार का ऐसे व्यक्ति के जिसके अन्तर्गत विदेशी भी आता है, सम्बन्ध में यह समाधान हो जाए कि उसे—(i) भारत की रक्षा, भारत के विदेशी सरकारों से सम्बन्ध या भारत की सुरक्षा पर, अथवा (ii) राज्य की सुरक्षा या लोक व्यवस्था बनाए रखने पर, अथवा (iii) समुदाय के लिए आवश्यक प्रदाय और सेवाएं बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से ऐसा आदेश करना आवश्यक है। उपधारा (2) उपधारा (1)(क) के अधीन निरोध की शक्ति के प्रयोग का प्राधिकार उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट कतिपय प्राधिकारियों को प्रदान करती है। ये अधिकारी जिला मजिस्ट्रेट आदि हैं। ये अधिकारी धारा 3(1)(क) (ii) और (iii)

---

[1] 1950 एस० सी० आर० 88

1973(4) eILR(PAT) SC 1

में उपवर्णित विषयों के सम्बन्ध में आदेश कर सकते हैं। धारा 5 द्वारा समुचित सरकार को धारा 3 के अधीन निरुद्ध व्यक्ति को निरोध के एक स्थान से हटा कर दूसरे पर ले जाने की शक्ति प्रदान की गई है। यह दूसरा स्थान सम्बन्धित राज्य के भीतर या उसके बाहर हो सकता है। धारा 6 द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि ऐसा कोई आदेश इस आधार पर अविधिमान्य न होगा कि सम्बन्धित व्यक्ति ऐसे कारागार में निरुद्ध किया गया है जो उस सरकार की या ऐसा आदेश करने वाले अधिकारी की अधिकारिता से बाहर है। धारा 8 में यह उपबन्धित किया गया है कि निरुद्ध व्यक्ति को निरोध-आधार की संसूचना सामान्यत: पांच दिन में और असाधारण दशाओं में निरोध की तारीख से पन्द्रह दिन में दे दी जाएगी। धारा 9 सलाहकार बोर्ड के संगठन के बारे में है। धारा 10 यह उपबन्धित करती है कि अधिनियम में अन्यथा उपबन्धित के सिवाय समुचित सरकार निरोध की तारीख से तीस दिन के अन्दर प्रत्येक मामला सलाहकार बोर्ड को निर्देशित करेगी। धारा 11 के अधीन सलाहकार बोर्ड को अपनी रिपोर्ट सरकार को निरोध की तारीख से दस सप्ताह के अन्दर देनी होती है। धारा 11 की उपधारा (4) निरुद्ध व्यक्ति के इस हक को समाप्त करती है कि वह सलाहकार बोर्ड के समक्ष अपने किसी विधि व्यवसायी के माध्यम से उपसंजात हो और वह बोर्ड के समक्ष वाली कार्यवाहियों और बोर्ड की राय को गुप्त बनाती है। धारा 12 में यह उपबन्धित है कि यदि बोर्ड की यह राय हो कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं तो सरकार निरोध-आदेश पुष्ट कर सकती है और ऐसे निरोध को ऐसी कालावधि तक के लिए चालू रख सकती है जैसी कि वह उचित समझे। यदि राय यह हो कि निरोध के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं है तो सरकार को निरोध-आदेश वापस लेना होगा। धारा 13 यह उपबन्धित करती है कि निरोध की अधिकतम कालावधि निरोध की तारीख से बारह मास तक की हो सकेगी। धारा 17 यह उपबन्धित करती है कि किसी विदेशी को, जिसके सम्बन्ध में निरोध-आदेश निकाला गया है, सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना भी उपधारा (1) के खण्ड (क) से लेकर (घ) तक में उपवर्णित परिस्थितियों में से किसी परिस्थिति में या मामलों के प्रकारों में से किसी प्रकार में, अर्थात्, (क) जहां ऐसा विदेशी आयुधों, गोला बारूद या विस्फोटों के साथ भारत के राज्य-क्षेत्र में प्रवेश करे या प्रवेश करने का प्रयत्न करे या जब उसके पास आयुध, गोला बारूद या विस्फोटक सामग्री हो अथवा जहां विदेशी दण्ड विधि संशोधन अधिनियम, 1961 की धारा 3 के उल्लंघन में किसी अधिसूचित क्षेत्र में प्रवेश करे या प्रवेश करने का प्रयत्न करे या वहां पाया जाए; अथवा जहां ऐसा विदेशी विधिमान्य यात्रा-दस्तावेजों के बिना भारत की सीमा से लगे हुए ऐसे क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं में प्रवेश करे या प्रवेश करने का प्रयत्न करे या वहां पाया जाए जो सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1961 की धारा 139 के अधीन किए गए आदेश में विनिर्दिष्ट हो; अथवा जहां केन्द्रीय सरकार के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि ऐसे विदेशी ने शासकीय गुप्त बात अधिनियम, 1923 के अधीन कोई अपराध किया है या करने वाला है, तीन मास से अधिक किन्तु दो वर्ष से अनधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार धारा 17 में मामलों के उन प्रकारों का, जिनमें या उन परिस्थितियों का, जिनके अधीन किसी विदेशी को सलाहकार बोर्ड को उसका मामला निर्देशित किए बिना, तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए निरुद्ध रखा जा सकता है, उल्लेख किया गया है।

9. अनुच्छेद 19(1) वाक्-स्वातन्त्र्य, अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य सम्मेलन करने, संस्था या संघ बनाने, भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण, भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने, सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन, कोई वृत्ति उपजीविका व्यापार या कारबार करने का अधिकार प्रत्याभूत करता है । किन्तु यह अधिकार उक्त अनुच्छेद के खण्ड (2) से लेकर खण्ड (6) तक में यथा उपबन्धित रूप में विधि द्वारा युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अध्यधीन कर दिया गया है । अनुच्छेद 21 प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता के संरक्षण को प्रत्याभूत करता है । उक्त अधिकार से व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़ कर अन्य किसी भी प्रकार वंचित नहीं किया जा सकता है । अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (2) द्वारा यह प्रत्याभूत किया गया है कि बन्दी किए गए व्यक्ति को ऐसे बन्दीकरण के कारणों से यथाशक्य शीघ्र अवगत कराये बिना हवालात में निरूद्ध नहीं किया जाएगा और न अपनी रूचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा कराने के उसके अधिकार से उसे वंचित किया जाएगा और यह कि ऐसे बन्दी को बन्दी बनाए जाने से चौबीस घण्टे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश कर दिया जाएगा । किसी भी व्यक्ति को उक्त कालावधि से अधिक के लिए मजिस्ट्रेट के प्राधिकारी के बिना बन्दी नहीं रखा जा सकता है। अनुच्छेद 22 का खण्ड (3) उक्त खण्ड (1) और (2) का ऐसे व्यक्ति को लागू होना वर्जित करता है जिसे निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के अधीन गिरफ्तार और निरूद्ध किया गया हो । किन्तु खण्ड (4) यह उपबन्धित करता है कि निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति का तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरूद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि— (क) सलाहकार बोर्ड ने तीन महीनें की उक्त कालावधि की समाप्ति से पूर्व यह राय प्रकट न कर दी हो कि ऐसे निरोध के लिए उसकी राय में पर्याप्त कारण हैं, या (ख) ऐसे व्यक्ति को खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन संसद् निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं किया गया है ।

10. खण्ड (7) द्वारा यह उपबन्धित किया गया है कि संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि (क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक की कालावधि के लिए खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के उपबन्धों के अनुसार सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना ही निरुद्ध किया जा सकेगा; (ख) किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिए कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा। सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 9 के अधीन संसद् भारत की रक्षा, विदेशों से सम्बन्ध या भारत की सुरक्षा से सम्बन्धित विषयों के बारे में ऐसी विधि पारित कर सकती है और सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन संसद् राज्य विधानमण्डलों के साथ समवर्ती रूप में राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदाय और सेवाएं बनाए रखने से सम्बन्धित विधि पारित कर सकती है ।

1973(4) eILR(PAT) SC 1

11. 3 दिसम्बर, 1971 को राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 352 के अधीन आपात की उद्घोषणा की । 4 दिसम्बर, 1971 को संसद् ने भारत रक्षा अधिनियम (1971 का 42) अधिनियमित किया। यह अधिनियम राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषित गम्भीर आपात को दृष्टि में रखते हुए अधिनियमित किया गया था और उसके द्वारा लोक क्षेम और हितों, भारत की रक्षा और सिविल रक्षा, कतिपय अपराधों के विचारण तथा तत्संबंधी विषयों के लिए विशिष्ट उपबन्ध किए गए थे। अधिनियम की धारा 2 (3) यह उपबन्धित करती है कि वह आपात उद्घोषणा के प्रवर्तन की कालावधि के दौरान प्रवृत्त रहेगी और वह आपात के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी छः मास तक प्रवृत्त बनी रहेगी। अधिनियम की धारा 6 से विभिन्न अन्य अधिनियमों में संशोधन किए गए हैं । उक्त संशोधित अधिनियमों में से एक अधिनियम है आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम 1971। धारा 6 की उपधारा (6) के खण्ड (घ) द्वारा उक्त सुरक्षा अधिनियम की धारा 13 संशोधित की गई है । धारा 13 में 'निरोध की तारीख से' पद के पश्चात 'या भारत रक्षा अधिनियम, 1971 के अवसान तक इनमें से जो भी पश्चात्वर्ती हो' पद जोड़ दिया गया है । धारा 6 की उपधारा (6) के खण्ड (ङ) से अधिनियम में एक नई धारा 17क जोड़ दी गई है । उक्त नई धारा इस प्रकार है :-

"17 क. (1) इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी यह है कि 3 दिसम्बर, 1971 को जारी की गई आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन की कालावधि के दौरान कोई व्यक्ति (जिसमें विदेशी भी हैं) जिसकी बाबत निरोध आदेश इस अधिनियम के अधीन किया गया हो, निम्नलिखित वर्गों के मामलों में अथवा निम्नलिखित परिस्थितियों में से किसी में सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना अपने निरोध की तारीख से तीन मास से अधिक की, किन्तु दो वर्ष से अनधिक की, अवधि पर्यन्त निरूद्ध रखा जा सकेगा, अर्थात्-

(क) जहां ऐसे व्यक्ति को भारत की रक्षा, भारत के विदेशी सरकारों से सम्बन्ध या भारत की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से निरुद्ध किया गया हो; अथवा

(ख) जहां ऐसे व्यक्ति को राज्य की सुरक्षा या लोक-व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति से कार्य करन से रोकने की दृष्टि से निरूद्ध किया गया हो ।

(2) किसी ऐसे व्यक्ति की दशा में जिसे उपधारा (1) लागू होती है, धारा 10 से लेकर 13 तक निम्नलिखित उपान्तरों के साथ प्रभावी होंगी, अर्थात्-

(क) धारा 10 में 'तीस दिन के भीतर' शब्दों के स्थान पर 'दो वर्ष के अवसान के पूर्ववर्ती तीन मास के पूर्व किसी समय न कि उसके पश्चात' शब्द तथा 'रखेगी' शब्द के स्थान पर 'रख सकेगी' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

1973(4) eILR(PAT) SC 1

(ख) धारा 11 में,

(i) उपधारा (1) में, 'निरोध की तारीख से' शब्दों के स्थान पर 'उसे निदेश किए जाने की तारीख से' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(ii) उपधारा (2) में 'सम्बद्ध व्यक्ति के निरोध के लिए' शब्दों के स्थान पर 'सम्बद्ध व्यक्ति को निरोध में बनाए रखने के लिए' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(ग) धारा 12 में उन दोनों स्थानों पर जहां 'व्यक्ति के निरोध के लिए' शब्द आते हैं 'व्यक्ति को निरोध में बनाए रखने के लिए' शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(घ) धारा 13 में, 'बारह मास' शब्दों के स्थान पर 'तीन वर्ष', शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।"

12. उक्त नई धारा 17 क द्वारा तीन मुख्य परिवर्तन किए गए हैं— (1) उसका विफलीकरण खण्ड (नान-आब्सटेन्टिव क्लाज) द्वारा अधिनियम के अन्य उपबन्धों को अप्रभावी कर दिया गया है; (2) उसकी उपधारा (1) के उपखण्ड (क) और (ख) में वर्णित परिस्थितियों और विहित प्रकार या प्रकारों के मामलों म व्यक्ति को तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकता है। किन्तु इस निरोध की कालावधि निरोध की तारीख से दो वर्ष से अधिक की नहीं होगी, अर्थात् निरोध की तारीख से अतिरिक्त इक्कीस मास तक सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करना आवश्यक नहीं रह गया है। इक्कीस मास की बात इस तथ्य को ध्यान में रख कर कही गई है कि धारा 17 क के जोडे जाने से पूर्व भी तीन मास तक निरुद्ध रखने के लिए सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करना आवश्यक नहीं था, और (3) किसी व्यक्ति को निरोध में रखने की अधिकतम कालावधि तीन वर्ष या भारत रक्षा अधिनियम, 1971 के समाप्त होने तक, इनमें से जो भी पश्चात्वर्ती हो, होगी। उक्त परिवर्तन संसद् ने अनुच्छेद 22 के खण्ड 7 (क) और (ख) के साथ पठित खण्ड (4) (ख) में अन्तर्विष्ट शक्ति के प्रयोग में किए हैं। उक्त शक्ति का प्रयोग सातवीं अनुसूची की सूची 1 और 3 की प्रविष्टि संख्या क्रमशः 9 और 3 के अधीन सभी शीर्षों से सम्बन्धित सभी परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों के सम्बन्ध में किया जाता है। इनमें से केवल एक शीर्ष ही अपवर्जित कर दिया गया है, अर्थात् आवश्यक प्रदाय और सेवाएं बनाए रखना, जिसकी बाबत संसद् निवारक निरोध सम्बन्धी विधि पारित कर सकती है।

13. पिटीशनर के काउन्सेल ने अधिनियम के उपबन्धों की विधिमान्यता पर और निरोध आदेश पर मुख्यतः निम्नलिखित आधारों पर आपत्ति की है —

"(1) यह कि धारा 6(6)(घ) और (ङ) द्वारा अधिनियम में किए गए संशोधन अनुच्छेद 22 (4), (5) और (7) का अतिक्रमण करते है;

(2) यह कि धारा 10, अपने संशोधन से पूर्व और पश्चात्, अनुच्छेद 22 (4) का अतिक्रमण करती है;

(3) यह कि भारत रक्षा अधिनियम की धारा 6(6)(घ) और (ङ) अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है;

(4) यह कि भारत रक्षा अधिनियम की धारा 6(6)(घ) तथा नई धारा 17 क(2)(घ) द्वारा अधिनियम की धारा 13 में संशोधन कर के विहित की गई अधिकतम कालावधि संसद् की शक्ति से परे की बात है क्योंकि उसका यह उपबन्ध दण्डात्मक है और वह निवारक निरोध की कोटि में नहीं आता है;

(5) यह कि अधिनियम की धारा 3, 5, 8, 11 और 12 अनुच्छेद 14, 19 और 21 का इस दृष्टि से अतिक्रमण करती हैं कि वे अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती हैं और उन्हें अनुच्छेद 19 (1) के किसी भी उपखण्ड का संरक्षण प्राप्त नहीं है; और

(6) यह कि भारत रक्षा अधिनियम की धारा 6(6)(घ) और (ङ) द्वारा किए गए संशोधन से वे बाद में आपात उद्घोषणा के कारण पुनर्जीवित नहीं होते हैं क्योंकि उनका कभी भी कोई अस्तित्व नहीं था।"

उक्त दलीलें दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। (1) प्रथम वर्ग संशोधन से पूर्व यथा विद्यमान उपबन्धों से संबन्धित है, और (2) दूसरा वर्ग भारत रक्षा अधिनियम की धारा 6 (6)(घ) और (ङ) द्वारा अधिनियम में किए गए संशोधनों से संबंधित है। प्रथम वर्ग की बाबत तर्क निम्न प्रकार है :–

"(i) यह कि अधिनियम अविधिमान्य है क्योंकि अनुच्छेद 14, 19(1) (क) से लेकर (घ) तक और (छ), 21 और 22 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों पर तद्-द्वारा अधिरोपित निर्बन्धनों को अनुच्छेद 19(1) के उपखण्ड (2), (3), (4) और (6) का संरक्षण प्राप्त नहीं है;

(ii) यह कि अधिनियम की धारा 3 अनुच्छेद 19(1) द्वारा प्रत्याभूत उसके विभिन्न अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है क्योंकि उसके अधीन व्यक्तिनिष्ठ समाधान के आधार पर न कि सम्बन्धित व्यक्ति के विरुद्ध किए गए अभिकथनों की सत्यता की बाबत वस्तुपरक निर्धारणों के आधार पर, ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध करने की शक्ति दी गई है;

(iii) धारा 8 अवैध है क्योंकि उसमें यह तो उपबन्ध कर दिया गया है कि निरोध कर्त्ता प्राधिकारी निरूद्ध व्यक्ति को उसके निरोध-आधार बताएगा और निरूद्ध व्यक्ति को अभ्यावेदन करने का अधिकार प्रदान किया जाएगा किन्तु उसके अभ्यावेदन पर किसी निष्पक्ष और स्वतंत्र निकाय द्वारा विचार किए जाने की बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है;

(iv) धारा 12 अवैध है क्योंकि सरकार, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों की अवहेलना करते हुए, निरूद्ध व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट के

आधार पर, ऐसी रिपोर्ट की अन्तर्वस्तु उसे बताए बिना और उस पर आपत्ति करने का उसे अवसर दिए बिना, तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध पुष्ट कर सकती है;

(v) अधिनियम के उपबन्ध विभेदकारी हैं क्योंकि उनके द्वारा निरूद्ध व्यक्ति की स्वाधीनता को गम्भीर रूप से कम कर दिया गया है और इसके विरूद्ध उसे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 से लकर 110 तक के अधीन सामान्यतः प्राप्त रक्षोपायों का लाभ नहीं दिया गया है।"

14. जैसा कि ऊपर कहा गया है धारा 17 क निम्नलिखित विषयों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्यों के आधार पर निरोध प्राधिकृत करती है, अर्थात्, (क) भारत की सुरक्षा, विदेशी शक्तियों से सम्बन्ध और भारत की रक्षा, तथा (ख) राज्य की सुरक्षा और लोक व्यवस्था बनाए रखना। काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि धारा के प्रथम भाग में 'निरूद्ध किया जा सकता है' पद के प्रयोग से निरोधकर्ता अधिकारी को इस बाबत अनियन्त्रित स्वविवेक प्रदान किया गया है कि वह चाहे तो इस धारा के उपबन्धों के अनुसार अधिक कठोरता से कार्यवाही करे या चाहे धारा 10 से लेकर धारा 13 तक के साथ पठित धारा 3 के अधीन कार्यवाही करे, भले ही सम्बन्धित व्यक्ति के क्रियाकलाप, जिनके कारण उसके विरूद्ध कार्यवाही की जानी है, दोनों ही दशाओं में उपरोक्त (क) और (ख) में उपवर्णित प्रकार के मामलों के अन्तर्गत ही आते हों। इस तर्क के समर्थन में काउन्सेल ने **नार्दर्न इण्डिया कैटरर्स प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **पंजाब** [1], **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **ठाकुर भरत सिंह** [2], **एस० जी० जय सिंघानी** बनाम **भारत संघ** [3], **सतवन्त सिंह साहनी** बनाम **बी० रामरतनम्, सहायक पासपोर्ट अधिकारी, भारत सरकार** [4], **नई दिल्ली** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चियों का अवलम्ब लिया है ।

15. किन्तु उक्त दलील को धारा 10 और धारा 17 क (1) और (2) क उपबन्धों से समर्थन नहीं मिलता है । पहली बात यह है कि धारा 10 'इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबन्धित के सिवाय' पद से प्रारंभ होती है। इन शब्दों का अर्थ है कि वह केवल ऐसे मामलों को लागू होगी जिनकी बाबत अधिनियम में कोई अभिव्यक्त रूप से उपबन्ध नहीं किया गया है अर्थात्, वह धारा ऐसे मामलों को लागू नहीं होगी जिन्हें धारा 17 और धारा 17 क लागू होती है, जो अधिनियम में 'अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित' मामलों के बारे में हैं। दूसरी बात यह है कि धारा 17 क (1) में प्रयुक्त 'निरूद्ध किया जा सकता है' पद उस पद के बाद में आने वाले शब्दों के साथ जुड़ा हुआ है, अर्थात् 'सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना' और "निम्नलिखित प्रकारों के मामलों या निम्नलिखित परिस्थितियों में से किसी परिस्थिति में × ×।"

---

(1) (1967) 3 एस० सी० आर० 399.

(2) (1967) 2 एस० सी० आर० 454.

(3) (1967) 2 एस० सी० आर० 703.

(4) (1967) 3 एस० सी० आर० 525,

'निरुद्ध किया जा सकता है' पद निस्सन्देह प्राधिकारी को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना ही किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध कर सकता है। किन्तु यह कालावधि किसी भी दशा में, उसमें उपवर्णित मामलों में, दो वर्ष से अधिक की न होगी। इसलिए 'निरुद्ध किया जा सकता है' पद ऐसा पद है जो सम्बन्धित प्राधिकारी को उस उपबन्ध में उपबन्धित कालावधि से अधिक के लिए बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना निरुद्ध करने की शक्ति प्रदान करता है। किन्तु इस पद के द्वारा प्राधिकारी को यह विकल्प प्रदान नहीं किया गया है कि वह धारा 17क को लागू करे या न करे। यदि यह मान भी लें कि धारा 17क व धारा 10 के साथ-साथ प्रवर्तन से अधिनियम के कार्यान्वयन में कोई अन्तर उत्पन्न हो सकता है तो भी यह अन्तर धारा 17क (2) के इन उपबन्धों के कारण विभेद की कोटि में नहीं आ सकता है कि जिन व्यक्तियों के मामले को धारा 10 की उपधारा (1) लागू होती है उनके मामलों में उक्त धारा की उपधारा को इस उपान्तरण के साथ पढ़ा जाएगा कि 'तीस दिन के अन्दर' पद के स्थान पर 'दो वर्ष के अवसान से किसी भी समय पूर्व किन्तु किसी भी दशा में ऐसे अवसान से तीन मास पूर्व की कालावधि के पश्चात् नहीं' पद रख दिया जाएगा। यदि यह दृष्टिकोण अपनाया जाए तो उक्त विभेद के परिणामस्वरूप अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण या उसके अनुसार विभेद का प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा। इस निष्कर्ष की पुष्टि धारा 17क(1) के आरंभ में ही प्रयुक्त विफलीकरण खण्ड और धारा 10 में विशेषता दर्शित करने वाला 'इस अधिनियम द्वारा अन्यथा उपबन्धित के सिवाय' पद के संयुक्त प्रभाव से हो जाती है।

16. किन्तु धारा 17क की विधिमान्यता पर की गई आपत्तियों में से यह आपत्ति महत्वपूर्ण है कि उक्त धारा अनुच्छेद 22(7) के प्रतिकूल है और उसकी अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करती है। इस तर्क के दो पक्ष हैं: (i) यह कि यदि अनुच्छेद 22(4), (5) और (7) का भली प्रकार अध्ययन किया जाए तो यह प्रकट होता है कि खण्ड (7), खण्ड (4) और खण्ड (2) में अधिकथित नियम का अपवाद है, और (ii) यदि खण्ड (7) का इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाए तो परिणाम यह निकलता है कि उक्त खण्ड संसद् को सामान्यतः ऐसे विषयों पर विधि बनाने की शक्ति प्रदान नहीं करता है जिनका उल्लेख सूची 1 और सूची 2 की क्रमशः प्रविष्टि संख्या 9 और 3 में किया गया है। संसद् ऐसा विधान तभी कर सकती है जब कि उसने खण्ड (4) में उपबन्धित रक्षोपायों का अनुपालन कर लिया हो, अर्थात् सलाहकार बोर्ड जैसे निष्पक्ष निकाय की राय प्राप्त कर ली हो। इसके प्रतिकूल उक्त खण्ड संसद् को ऐसे असाधारण प्रकार या प्रकारों के मामलों या असाधारण परिस्थितियों में ही निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की शक्ति प्रदान करता है जिन्हें संसद् ऐसी विधि में विनिर्दिष्टतः विहित करे। दलील यह है कि धारा 17क खण्ड (7) की ऐसी अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं करती है क्योंकि धारा 17क में विषयों और शीर्षों के (आवश्यक प्रदाय और सेवाओं के बनाए रखने सम्बन्धी विषय को छोड़कर) प्रगणन मात्र से खण्ड (7) में यथा उपबन्धित मामलों के प्रकार या प्रकारों का या परिस्थितियों का विनिर्देश नहीं हो गया है।

1973(4) eILR(PAT) SC 1

17. इस दलील से तीन प्रश्न उत्पन्न होते है : (1) क्या खण्ड (7) खण्ड (4) में अधिकथित नियम का अपवाद है, (2) क्या निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की संसद् की शक्ति खण्ड (7) में अधिकथित अपेक्षाओं द्वारा सीमित कर दी गई है, और (3) क्या उन शीर्षों या विषयों या उनमें से कुछ का, जिन पर संसद् विधान कर सकती है, अक्षरशः उल्लेख कर देने से खण्ड (7) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो गई है ?

18. उक्त सभी प्रश्नों पर निवारक निरोध अधिनियम, 1950 की धारा 12 के सम्बन्ध में **गोपालन** बनाम **मद्रास राज्य** (1) में किसी न किसी दृष्टि से विचार किया जा चुका है । उक्त धारा की विधिमान्यता पर इस आधार पर आपत्ति की गई थी कि वह खण्ड (7) में अधिकथित अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करती है और इसके लिए कारण ये बताए गए थे कि (1) धारा में केवल उन शीर्षों या विषयों का (आवश्यक प्रदाय और सेवाएं बनाए रखने के विषय को छोड़कर), जिन पर कि संसद् सूची 1 और सूची 3 की मद संख्या क्रमशः 9 और 3 के अधीन निरोध सम्बन्धी विधि बना सकती है, उल्लेख कर दिया गया है । उस धारा में इस बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है कि किस प्रकार या प्रकारों के मामलों या परिस्थितियों में बोर्ड की राय के बिना भी निरोध का आदेश किया जा सकता है, और (2) क्योंकि उक्त धारा द्वारा दोनों ही अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई है, इस सम्बन्ध में शब्द 'और' का कार्य संयोजक का है वियोजन का नहीं । अधिनियम की धारा 3(1) केन्द्रीय और राज्य सरकारों को किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने का प्राधिकार देती है (i) यदि उसका यह समाधान हो जाए कि उस व्यक्ति को—(क) भारत की रक्षा, भारत के विदेशी सरकारों से सम्बन्ध या भारत की सुरक्षा पर अथवा (ख) राज्य की सुरक्षा या लोक व्यवस्था बनाए रखने पर, (ग) समुदाय के लिए आवश्यक प्रदाय और सेवाएं बनाए रखने पर, प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से निरुद्ध करना आवश्यक है अथवा (ii) यदि किसी विदेशी के सम्बन्ध में यह समाधान हो जाए कि भारत में उसकी उपस्थिति को विनियमित करने की दृष्टि से या उसे भारत से बाहर निकालने की व्यवस्था करने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक है तो ऐसे विदेशियों को निरुद्ध किया जा सकता है । धारा 9 द्वारा समुचित सरकार से यह अपेक्षा की गई है कि धारा 3 के अधीन निरुद्ध व्यक्ति के मामले को निरोध की तारीख से छः सप्ताह के अन्दर सलाहकार बोर्ड के समक्ष रख दिया जाए बशर्ते कि (1) आदेश इस शंका के आधार पर किया गया हो कि निरुद्ध व्यक्ति आवश्यक प्रदाय और सेवाओं के बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति में कार्य करने वाला है, और (2) आदेश ऊपर उल्लिखित दो शीर्षों के अधीन किसी विदेशी के विरुद्ध किया गया हो । अधिनियम की धारा 12 यह उपबन्धित करती है कि बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना भी निरुद्ध व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है । किन्तु ऐसी वर्धित अवधि निरोध की तारीख से एक वर्ष से अधिक की नहीं होगी । साथ ही उक्त वर्धित निरोध निम्नलिखित प्रकार या

(1) 1950 एस० सी० आर० 88.

1973(4) eILR(PAT) SC 1

प्रकारों के मामलों अथवा परिस्थितियों में ही किया जा सकता है, अर्थात्, सम्बन्धित व्यक्ति को इस उद्देश्य से निरुद्ध किया जा सकता है कि उसे (क) भारत की रक्षा, विदेशों से सम्बन्ध, भारत की सुरक्षा और (ख) राज्य की सुरक्षा या लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रीति में कार्य करने से रोक दिया जाए। धारा 12(2) द्वारा यह उपबन्धित किया गया है कि समुचित सरकार निरोध के आदेश का ऐसे व्यक्ति से परामर्श करके, जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, या रह चुका है, या होने के लिए अर्हित है, पुनर्विलोकन कर सकती है। पुनर्विलोकन के लिए उपबन्ध और निष्पक्ष और स्वतंत्र व्यक्ति के हस्तक्षेप से धारा 12(1) की कठोरता कुछ कम हो जाती है। न्यायिकवत् प्रकृति के ऐसे पुनर्विलोकन की बाबत आक्षेपित धारा 17 क में कोई उपबन्ध नहीं किया गया है। [देखिए—**लखनपाल** बनाम **भारत संघ** (1)]

19. न्यायालय ने बहुमत से (उसमें मुख्य न्यायाधिपति कानिया, न्यायाधिपति पातंजली शास्त्री, न्यायाधिपति मुखर्जिया और न्यायाधिपति दास सम्मिलित थे) दोनों ही दलीलों को अस्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया—(1) कि संदर्भानुसार 'और' शब्द से 'या' अभिप्रेत है। इसका परिणाम यह हुआ कि संसद् अनुच्छेद 22 (7) के अधीन चाहे तो वे परिस्थितियां विहित कर दे जिनमें, या चाहे मामलों के प्रकार विहित कर दें जिनमें कि सलाहकार बोर्ड से निर्देश किए बिना ही निरुद्ध व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध में रखा जा सकता है, और इससे अनुच्छेद 22 (7) का पूर्ण अनुपालन हो जाएगा और (2) यह कि धारा 12 में निर्दिष्ट विषयों से मामलों के प्रकार या परिस्थितियों का पर्याप्त वर्णन हो गया है और तदनुसार अनुच्छेद 22(7)(क) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो गई है। परिणामस्वरूप, उक्त धारा पर कोई भी सांविधानिक आपत्ति नहीं की जा सकती है।

20. न्यायालय ने अल्पमत से, जिसमें न्यायाधिपति फज़ल अली और महाजन सम्मिलित थे, पिटीशनर की दलील के दोनों ही पक्ष स्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि शब्द 'और' संयोजक के रूप में प्रयुक्त हुआ है और वह वियोजक नहीं है और इसलिए बोर्ड का मत प्राप्त किए बिना ही निरुद्ध व्यक्ति को तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए निरुद्ध करने के लिए आक्षेपित उपबन्ध में मामलों के प्रकारों और परिस्थितियों, दोनों का ही, उल्लेख होना आवश्यक है। उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया कि 'प्रकार या प्रकारों के मामलों' और 'परिस्थितियों' से केवल वे शीर्ष या विषय अभिप्रेत नहीं हैं जिनकी बाबत खण्ड (7)(क) के अधीन निरोध विधि बनाई जा सकती है।

21. मुख्य न्यायाधिपति कानिया ने यह अभिनिर्धारित किया कि खण्ड (7)(क) में प्रयुक्त 'और' शब्द का अर्थ यह है कि तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निवारक निरोध करने की शक्ति का प्रयोग या तो उन परिस्थितियों में किया जा सकता है या फिर उस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किया जा सकता है जिनमें कि यह

(1) (1967) 1 एस० सी० आर० 433.

1973(4) eILR(PAT) SC 1

आशंका हो कि जिस व्यक्ति की बाबत सन्देह उत्पन्न हुआ है वह धारा 12 में उल्लिखित अवांछनीय कार्य करने वाला है। उनके मतानुसार उपखण्ड के प्रथम भाग में दो बार 'किन्तु' शब्द के प्रयोग और प्रत्येक के पश्चात् 'अर्ध-विराम' के प्रयोग से यह दर्शित होता है कि विधानमण्डल का आशय उक्त शब्दों को वियोजक, न कि संयोजक, के रूप में प्रयुक्त करने का था (126-127)। न्यायाधिपति पातंजली शास्त्री (जैसे कि वे उस समय थे) ने भी 'और' शब्द का अर्थ यही लगाया है कि संसद् या तो उन परिस्थितियों को विहित कर दे या फिर मामलों के उन प्रकारों को अथवा दोनों को ही विहित कर दे और यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 12 में दोनों ही बातों का उल्लेख कर दिया गया है, क्योंकि यह विहित कर देने से, कि जिन व्यक्तियों द्वारा भारत की रक्षा के प्रतिकूल कार्य किया जाना सम्भाव्य हो उन्हें तीन मास की कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के लिए भी निरुद्ध किया जा सकता है, व्यक्तियों का ऐसा प्रकार (क्लास) विहित हो जाता है जिसे और ऐसी परिस्थितियां विहित हो जाती हैं जिनमें संबंधित व्यक्तियों को अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है (216)। न्यायाधिपति मुखर्जिया (जैसे कि वे उस समय थे) का यह विचार था कि खण्ड 7(क) शक्ति प्रदान करने वाला उपबन्ध है और संसद्, यदि वह चाहे तो, उसी के अनुरूप विधि बना सकती है। जहां किसी प्राधिकारी को दो पृथक्-पृथक् कार्य करने की शक्ति प्रदान की जाती है वहां ऐसे प्राधिकारी आम तौर से ऐसे दोनों ही कार्य करने के लिए बाध्य नहीं होता है। यदि वह चाहे तो उनमें से कोई भी कार्य कर सकता है (पृष्ठ 282)। न्यायाधिपति दास (जैसे कि वे उस समय थे) का भी यह विचार था कि संसद् खण्ड (7) के अधीन परिस्थितियों और प्रकारों दोनों का ही उल्लेख करने के लिए बाध्य नहीं है और किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाए, प्रस्तुत मामले में संसद् ने तथ्यतः और सारतः दोनों ही बातें विहित कर दी हैं, क्योंकि कुछ विशिष्ट दशाओं में परिस्थितियों और मामलों के प्रकार एक ही हो जाते हैं (330-331)। अल्पमत न्यायाधिपतियों का, इसके प्रतिकूल, मत यह था कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) में एक सामान्य नियम अधिकथित किया गया है और खण्ड (7) उसका अपवाद है। यदि यह दृष्टिकोण अपनाया जाए तो खण्ड (7) का अर्थ यह हुआ कि संसद् सलाहकार बोर्ड से मुक्ति पा सकती है, किन्तु यदि वह ऐसा करती है तो उसे परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों, दोनों का ही उल्लेख करना होगा और इसलिए उस खण्ड में प्रयुक्त शब्द 'और' का अर्थ 'या' नहीं लगाया जा सकता है (175-176 और 235)।

22. किन्तु 'किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में' किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन 'तीन महीने से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है' पद का स्पष्टीकरण देते हुए मुख्य न्यायाधिपति कानिया ने यह मत व्यक्त किया कि 'परिस्थितियों' से आम तौर से घटनाएं या स्थिति अभिप्रेत है, जिनका सम्बन्धित व्यक्ति के कार्यों से कोई संबंध नहीं है और 'प्रकार या प्रकारों के मामलों' से अभिप्रेत है ऐसे निश्चित ग्रुप जो ऐसे व्यक्तियों के, जिनका समान उद्देश्य या विचार है, कार्यों पर आधारित हैं। किन्तु उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि यह उपधारणा गलत है कि सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 3

1973(4) eILR(PAT) SC 1

को परिस्थिति या मामलों का प्रकार नहीं माना जा सकता है और इसलिए खण्ड (7) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति के रूप में धारा 12 में उक्त शब्दावली का प्रयोग किया ही जा सकता था (127-128)। न्यायाधिपति पातंजली शास्त्री का यह विचार था कि खण्ड (4) और खण्ड (7) परस्पर स्वतंत्र हैं और उन्हें इस प्रकार सम्बद्ध नहीं किया जा सकता है कि खण्ड (7) खण्ड (4) का परन्तुक या अपवाद बन जाए और यह कि यदि उन्हें नियम और अपवाद के रूप में पढ़ा जाता है तो यह बात उनकी भाषा और रचना की दृष्टि से गलत होगी। उनका यह भी विचार था कि खण्ड (7) निवारक निरोध के बारे में है। निवारक निरोध सदैव सुरक्षा की दृष्टि से ही किया जाता है। यह निरोध अनिवार्यतः सभी मामलों में शंकास्पद स्थितियों में या प्रत्याशा में ही किया जाता है। यह सबूत से भिन्न होता है [रेक्स बनाम हेलीडे (1)] और यह कि ऐसी विधियों में उन विभिन्न परिस्थितियों और मामलों के विभिन्न प्रकारों का सविस्तार प्रगणन, जिनमें कि सम्बन्धित व्यक्ति को बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना ही तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है, असम्भव है। उनकी मोटे तौर पर रूप-रेखा ही दी जा सकती है (214)। उनके मतानुसार यदि प्रतिकूल क्रियाकलापों की, जिनमें सम्बन्धित व्यक्ति का लगना सम्भाव्य है, सामान्य प्रकृति को मोटे तौर से उपदर्शित कर दिया जाता है तो यह पर्याप्त मार्गदर्शन होगा। उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि यह कहना निराधार है कि उन छः विषयों में से, जिनकी बाबत उक्त दो प्रविष्टियों के अधीन निरोध-विधि बनाना अनुज्ञात है, पांच का उल्लेख कर देने से खण्ड (7)(क) की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हो जाती है। उन्होंने कहा कि यदि ऐसा किया जाता है तो मेरी समझ से इसे उन मामलों का मोटे तौर से वर्गीकरण क्यों नहीं माना जा सकता है अथवा उन परिस्थितियों का मोटे तौर से वर्णन क्यों नहीं माना जा सकता है, जिनमें कि संसद् अधिक लम्बे निरोध को न्यायोचित समझती है (215)।

23. मुख्य न्यायाधिपति कानिया और न्यायाधिपति पातंजली शास्त्री का यह समाधान हो गया था कि यदि उक्त प्रविष्टियों में उल्लिखित विषयों या उनमें से कुछ का उल्लेख कर दिया जाता है तो इससे खण्ड (7) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाती है। किन्तु न्यायाधिपति दास और न्यायाधिपति मुखर्जीया ने उक्त मत से अपनी सहमति स्पष्ट भाषा में व्यक्त नहीं की है। यह बात निम्नलिखित पैरा से स्पष्ट हो जाती है—

> "यह सच है कि सामान्यतः परिस्थितियों का सम्बन्ध असम्बद्ध बातों से, जैसे, बलवा, राजनैतिक या साम्प्रदायिक बगावत या किसी अन्य प्रकार की असामान्य स्थिति आदि से, होता है और यह कहा जाता है कि संविधान निर्माताओं के ध्यान में ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की भी आशंका थी जिसमें कि सलाहकार बोर्ड का मत प्राप्त करना समीचीन नहीं समझा गया है। कहा यह भी गया है कि संविधान निर्माताओं को यह भी ज्ञात था कि ऐसे खतरनाक व्यक्ति (निरुद्ध व्यक्ति) भी हो सकत हैं जिन्हें सलाहकार बोर्ड के विशेषाधिकार के प्रयोग से वंचित करना उचित होगा। मैं निःशंक रूप से यह स्वीकार करता हूं कि यह अच्छा और वांछनीय होता यदि विनिर्दिष्ट

(1) ए० आई० आर० (1917) ए० सी० 260 पृष्ठ 275.

परिस्थितियों का या प्रकारों का अधिक स्पष्ट और निश्चित रूप में विनिर्देश कर दिया गया होता । किन्तु यह तो एक आदर्श की बात है । स्पष्ट रूप से संविधान में ऐसा को निर्बन्धन विहित नहीं किया गया है * * * *"

(न्यायाधिपति दास के मतानुसार—पृष्ठ 331-332)

"न्यायाधिपति मुखर्जी ने कहा कि मुझे इस बाबत पूरी तरह से सन्देह है कि अधिनियम की धारा 12 में संसद् ने मामलों का जो वर्गीकरण किया है उससे वस्तुतः संविधान के उद्देश्य की पूर्ति हो गयी है । वर्गीकरण का आधार निरुद्ध व्यक्तियों के प्रत्याशित कार्य हैं जिनका वर्णन उक्त सूचियों के संदर्भ में किया गया है । छः में से पांच शीर्षों को ले लिया गया है और उन्हें मामलों के प्रकार कहा गया है, जिसे अनुच्छेद के खंड (4) (क) का संरक्षण प्राप्त है । यह आम समझ के प्रतिकूल बात है कि पांच मदों से संबंधित सभी क्रियाकलाप समान रूप से खतरनाक हैं और उन सब के विरुद्ध ऐसा कठोर बर्ताव अपेक्षित है। उक्त विवरण अत्यंत साधारण है और इन शीर्षों में से प्रत्येक के अधीन ऐसे अनेक कार्य हो सकते हैं जिनकी गम्भीरता और खतरे की मात्रा में परस्पर अंतर हो ।" (281)

यद्यपि उनका यह विचार था कि धारा 12 की विरचना संविधान के उद्देश्य को सम्यक्तः ध्यान में रख कर नहीं की गई है तथापि उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि वे यह नहीं कह सकते हैं कि सम्बन्धित धारा संविधान की दृष्टि से शक्तिबाह्य और अविधिमान्य है ।

24. इसके प्रतिकूल न्यायाधिपति फज़ल अली ने यह अभिनिर्धारित किया कि : (1) खण्ड (4) द्वारा एक सामान्य नियम अधिकथित किया गया है और खण्ड (7) उसका अपवाद है और यह कि ऐसा आशय कभी नहीं था कि संसद् सामान्य बात को असामान्य मान लेगी या किसी नियम को अपवाद बना देगी ; (2) यह कि जिन परिस्थितियों का उल्लेख किया जाना है उनका विशिष्ट और असाधारण होना अनिवार्य है और मामलों के प्रकार या प्रकारों की भी वैसी ही प्रकृति होनी अनिवार्य है । संविधान का यह आशय कभी नहीं था कि संसद् यंत्रवत् रूप में विधायी प्रविष्टियों में उल्लिखित विषयों में से अधिकतर या सभी विषयों को अक्षरशः उद्युत कर दे और इस बाबत अपने मस्तिष्क का प्रयोग न करे कि किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में सलाहकार बोर्ड की उपेक्षा की जा सकती है; (3) यह कि यदि खण्ड (4) और खण्ड (7) को वैकल्पिक ही मान लिया जाए और उन्हें नियम और अपवाद न माना जाए तो भी खण्ड (7) (क) के अधीन निर्मित विधि अत्यंत असाधारण रूप से कठोर विधि होगी और ऐसी विधि असाधारण परिस्थितियों में ही, न कि उन सभी परिस्थितियों में लागू की जानी चाहिए जो उक्त प्रविष्टियों के अधीन आती हैं और जिनकी बाबत निरोध-विधि बनाई जा सकती है । इसका अर्थ यह हुआ कि परिस्थितियां तथा मामलों के प्रकार या प्रकारों की प्रकृति विशिष्ट प्रकार की होनी चाहिए जिनकी बाबत ऐसे विधान की अपेक्षा हो सकती है और जिनमें सलाहकार बोर्ड के माध्यम से उपबन्धित सुरक्षा के उपायों से छूट दी जा सकती है (173-176) । न्यायाधिपति महाजन (जैसे कि वे उस समय थे) ने यह

अभिनिर्धारित किया कि यदि खण्ड (7) को एक स्वतंत्र खण्ड मान लिया जाए या उसे खण्ड (4) का वैकल्पिक खण्ड मान लिया जाए तो खण्ड (4) निष्फल हो जाएगा और ऐसा अर्थान्वयन करने का परिणाम यह होगा कि मानो संविधान में एक ओर यह कहा गया है कि निवारक-निरोध संबंधी विधि के अधीन सलाहकार बोर्ड को निर्देश किए बिना तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध उपबन्धित नहीं किया जा सकता है और दूसरी ओर यह कि संसद्, यदि चाहे तो, सूचियों म उल्लिखित सभी विषयों या किसी विषय के संबंध में ऐसा विधान कर सकती है। यदि ऐसा आशय होता तो ऐसे विषय की बाबत, जिससे कि वैयक्तिक स्वाधीनता पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है, संविधान में ऐसे किसी रक्षोपाय के उपबन्धनों की आवश्यकता ही न होती। खण्ड (7) का अर्थान्वयन करते हुए उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान में निरोध की विभिन्न कालावधियां इस बात को ध्यान में रखकर विहित की गई हैं कि उनका उपयोग आशंकित कार्य की प्रकृति के अनुसार आवश्यकतानुसार किया जा सकता है, अर्थात्, साधारण मामलों में तीन मास की कालावधि के लिए निरोध किया जा सकता है; अधिक गम्भीर मामलों में बोर्ड के हस्तक्षेप से उक्त कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध किया जा सकता है और इससे भी अधिक गम्भीर प्रकार के मामलों में या गम्भीर परिस्थितियों में किए गए कार्यो के लिए बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना ही तीन मास से भी अधिक की कालावधि के लिए निरोध किया जा सकता है (238-239)।

25. **गोपालन वाले मामले** [1] में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से लगभग एक मास पूर्व कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **सत्येन्द्र नारायण रे चौधरी बनाम मुख्य सचिव पश्चिमी बंगाल सरकार** [2] (पूर्ण न्यायपीठ: 1950-51) में बहुमत ने यह विनिश्चित किया था कि 1950 के अधिनियम की धारा 12 में छः शीर्षों में से पांच शीर्षों का उल्लेख कर देने से अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) (क) के साथ पठित खण्ड (4) (ख) के अधीन अपेक्षाओं का पर्याप्त अनुपालन हो गया है।

26. पिटीशनर के काउन्सेल ने न्यायाधिपति फ़जल अली और महाजन द्वारा बताए गए तर्क का समर्थन किया जब कि विद्वान महान्यायवादी ने यह दलील दी कि न्यायाधिपतियों के बहुमत के निर्णय में तर्क अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) और (7) के अनुरूप हैं। उन्होंने निम्नलिखित प्रस्थापनाएं कीं और यह निवेदन किया कि उन्हें स्वीकार किया जाए——

(1) संविधान द्वारा निवारक निरोध को प्राधिकृत किया गया है और उसके लिए अनुच्छेद 22(4) से लेकर 22(7) तक में विनिर्दिष्ट उपबन्ध कर दिए गए हैं;

(2) जिन शीर्षों की बाबत निवारक निरोध के लिए आदेश किया जा सकता है उनका सावधानीपूर्वक और साशय उल्लेख सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 3 में कर दिया गया है;

---

(1) 1950 एस० सी० आर० 88.

(2) आई० एल० आर० (1950) 1 कलकत्ता 1.

(3) संविधान द्वारा अनुच्छेद 22 के अधिष्ठायी भाग के खण्ड (4) (क) और उसी अनुच्छेद के खण्ड (7) (क) तथा (ख) के साथ पठित खण्ड (4) (ख) में दो भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है। इन परिस्थितियों में ही निवारक निरोध आदिष्ट किया जा सकता है ;

(4) शक्ति प्रदान करने वाले खंड (7) (क) के सिवाय संसद् और राज्य विधान-मंडल, दोनों ही, सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन निवारक निरोध संबंधी विधि बनाने के लिए सक्षम हैं ;

(5) जहां तक कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) का सम्बन्ध है, यह शक्ति प्रदान करने वाला खण्ड है और वह उन दो स्थितियों की बाबत उपबन्ध करता है जिनमें उस खण्ड के अधीन विधि केवल संसद् ही बना सकती है। दूसरे शब्दों में, ये दो स्थितियां एक दूसरे से स्वतंत्र हैं और वे पुरोभाव्य शर्त के रूप में उपबन्धित नहीं हैं।

विद्वान् महा न्यायवादी ने यह तर्क पेश किया कि खण्ड (7) (क) यह उपबन्धित करता है कि संसद् या तो उन परिस्थितियों का उल्लेख करे या मामले के वे प्रकार विहित करे जिनमें किसी व्यक्ति का मामला सलाहकार बोर्ड को निर्देशित किए बिना उसे तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में उक्त खण्ड सामर्थ्य प्रदान करने वाला खण्ड है जो संसद् को (1) सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना भी तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए किसी व्यक्ति को निरूद्ध करने के लिए परिस्थितियां विहित करने की शक्ति प्रदान करता है ; और (2) मामले के प्रकार या प्रकारों को विहित करने की शक्ति प्रदान करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि संसद् उक्त दो बातों में से किसी भी एक बात का उल्लेख कर सकती है और इसलिए खण्ड (7) (क) में 'और' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यह शब्द वियोजक के रूप में, न कि संयोजक के रूप में, प्रयुक्त हुआ है। उनका कहना था कि 'परिस्थितियों' से वे शीर्ष या विषय अभिप्रेत हैं जिनका उल्लेख उक्त दो विधायी प्रविष्टियों में किया गया है और 'मामलों के प्रकार या प्रकारों' पदावली से घटानाएं या क्रियाकलाप अभिप्रेत हैं। किन्तु यह पदावली व्यक्तियों से या व्यक्तियों के समूह या समूहों से सम्बन्धित नहीं है।

27. विद्वान महा न्यायवादी ने अन्त में यह तर्क पेश किया (जिसके बारे में हम सब को ही पूर्णज्ञान है) कि **गोपालन वाले मामले** [1] में जो बहुमत से विनिश्चय किया गया है वह इतने अधिक समय तक प्रभावी रह चुका है कि उसमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं है बशर्ते कि ऐसा हस्तक्षेप करने के लिए मजबूत और स्पष्ट कारण उपस्थित न हों। दूसरी ओर पिटीशनर के काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि उक्त बहुमत विनिश्चय अनुच्छेद 22 की स्कीम और निर्बन्धनों के प्रतिकूल है। चूंकि प्रस्तुत मामला वैयक्तिक स्वाधीनता के अधिकार से सम्बन्धित है इसलिए यह तथ्य कि उक्त विनिश्चय बहुत समय तक प्रभावी रहा है, उक्त विनिश्चयों पर पुनः विचार करने के लिए बाधक नहीं हो सकता है। जिन सिद्धान्तों के आधार पर विनिश्चयों पर पुनर्विचार किया जा सकता है

(1) 1950 पु० सी० आर० 88.

उनकी बाबत स्पष्टीकरण इस न्यायालय ने अनेक विनिश्चयों में दिया है । इन विनिश्चयों में से दो विनिश्चय उल्लेखनीय है : **दि बंगाल इम्यूनिटी कम्पनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य** ([1]) और **लीगल रिमेंबरेन्सर, पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **कारपोरेशन ऑफ कलकत्ता** ([2]) । इन विनिश्चयों में यह अधिकथन किया गया है कि यह न्यायालय अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों पर पुनर्विचार तभी करेगा जब कि उसका यह समाधान हो जाए कि उसने पूर्व विनिश्चय में गलती की है अथवा यह कि ऐसा विनिश्चय सामान्य सार्वजनिक हित पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है अथवा वह 'हमारे संविधान के विधिक दर्शन के प्रतिकूल है' और यह कि संविधान संबंधी विषयों में यह न्यायालय ऐसा पुनर्विचार अधिक तत्परता से करेगा और विधि की अन्य शाखाओं के सम्बन्ध में ऐसा पुनर्विचार कम तत्परता से करेगा, क्योंकि किसी भूल को कायम रखने से सार्वजनिक हित की हानि होती है । वस्तुत: 'निर्णीतानुसरण' (स्टेयर डेसिसिस) के सिद्धान्त की व्यापकता प्रस्तुत मामले में भागत: इस तथ्य से कम हो गई है कि **गोपालन वाले मामले** ([3]) में बहुमत का यह विनिश्चय होते हुए भी, कि 1950 के अधिनियम की आक्षेपित धारा 12 विधिमान्य है, कदाचित अल्पमत को मानते हुए उक्त धारा को अधिनियम में से ठीक अगले वर्ष से ही निवारक निरोध (संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा निकाल दिया गया है। साथ ही बहुमत विनिश्चय की यह महत्वपूर्ण धारणा कि अनुच्छेद 22 स्वयं में पूर्ण संहिता है और इसलिए उस अनुच्छद द्वारा अनुज्ञात विधिक उपबन्धों की विधिमान्यता अनुच्छेद 19 के उपबन्धों के आधार पर निर्णीत नहीं की जानी चाहिये, **आर० सी० कूपर** बनाम **भारत संघ** ([4]) में अननुमोदित कर दी गई है । तथापि हमें इस सामान्य सिधान्त को मस्तिष्क में रखना चाहिए कि पूर्वतर विनिश्चयों को तभी उलटा जा सकता है जब कि कोई स्पष्ट विवशता सामने आ जाए और पूर्वतर विनिश्चयों को उन परिस्थितियों में विशिष्टत: नहीं उलटा जाना चाहिए जब कि विधानमण्डल ने उनका अनुसरण करके कोई विधान कर दिया हो । प्रस्तुत मामले में संसद् ने आक्षपित धारा 17-क का अधिनियमन इसी प्रकार किया है ।

28. अनुच्छेद 19 (1) के अधीन अनेक स्वतंत्रताएं प्रत्याभूत की गई हैं । ये स्वतंत्रताएं सभी प्रजातंत्रिक देशों में मान्य हैं । किन्तु इन स्वतंत्रताओं को सार्वजनिक हित और सार्वजनिक लाभों के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करने की राज्य की शक्ति के अध्यधीन कर दिया गया है । अनुच्छेद 21 में भी प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मनमाने वंचन के विरुद्ध सुस्वीकृत रक्षोपाय उपबन्धित किए गए हैं और यह विहित किया गया है कि इस प्रत्याभूत अधिकार में हस्तक्षेप विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किया जा सकता है और तद्द्वारा यह सुनिश्चित किया गया है कि शासन विधि का होगा न कि किसी व्यक्ति का । अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (2) द्वारा यह सामान्य नियम अधिकथित किया गया है कि निरुद्ध व्यक्ति को उसके निरोध के आधार यथाशक्यशीघ्र बता दिए जाएं और उक्त उपबन्धों द्वारा यह भी प्रत्याभूत किया गया है कि कि ऐसे निरुद्ध व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार विधिक व्यवसायी की सहायता प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो और यह

([1]) (1955) 2 एस० सी० आर० 603.

([2]) (1967) 2 एस० सी० आर० 170.

([3]) (1950) एस० सी० आर० 88.

([4]) (1970) 3 एस० सी० आर० 530.

अनिवार्यता भी उपबन्धित कर दी गई है कि उसे यथाशक्यशीघ्र मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश कर दिया जाए। इस प्रकार निरोध के लिए विधायी या कार्यपालिका शक्ति के विरुद्ध न्यायिक मंजूरी (सैंक्शन) उपबन्धित कर दी गई है।

29. अनुच्छेद 22 के खंड (3) द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि खण्ड (1) और (2) में की कोई बात शत्रु अन्यदेशीय और निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध व्यक्ति के मामले में लागू न होगी। इस प्रकार अनुच्छेद 22 के खण्ड (1) और (2) द्वारा अधिकथित नियमों के अपवाद के रूप में खण्ड (3) अन्तर्विष्ट करके भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप देश की आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा को खतरे और गंभीर दुर्घटनाओं से बचाने की बाबत उपबन्ध कर दिए गए हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि संविधान निर्माताओं ने निवारक निरोध को एक अनिवार्य बुराई माना है और यह माना है कि सांविधानिक स्कीम में, जिसमें वैयक्तिक स्वाधीनता को सुमान्य रूप में प्रत्याभूत किया गया है, मान्यता दे दी गई है। इस प्रकार निवारक निरोध सम्बन्धी विधियों की आवश्यकता को मान्यता देने के पश्चात् संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप में उन शीर्षों या विषयों को सीमित कर दिया है जिनकी बाबत स्वयं संसद् और संसद् के साथ-साथ राज्य विधानमण्डल को क्रमशः सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन निवारक निरोध सम्बन्धी विधि अधिनियमित कर सकते हैं। द्वितीयतः, उन्होंने खण्ड (4) में यह उपबन्धित किया है कि निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि (क) न्यायिक दृष्टि से अनुभवी व्यक्तियों से मिलकर बने सलाहकार बोर्ड ने यह रिपोर्ट न दे दी हो कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं; या (ख) खण्ड (7) (क) और (ख) के साथ पठित खंड (4) (ख) के अधीन पारित संसदीय कानून के अनुसार ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध न किया गया हो। ये उपबन्ध स्पष्टतः यह दर्शित करते हैं कि सामान्यतः निवारक निरोध तीन मास की कालावधि के लिए ही हो सकता है। किन्तु यदि विधि द्वारा उक्त कालावधि से अधिक की कालावधि के लिए निरोध किया जाना उपबन्धित किया जाता है तो ऐसा निरोध किसी निष्पक्ष और स्वतंत्र निकाय, अर्थात्, सलाहकार बोर्ड, के हस्तक्षेप से ही किया जा सकता है। खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध तभी किया जा सकता है जब कि ऐसे व्यक्ति को खण्ड (7) (क) और (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया गया हो। इस प्रकार खण्ड (4) में उन दो स्थितियों का उल्लेख है जिनमें कि तीन मास के निरोध के नियम में ढील दी जा सकती है; अर्थात् (1) जब कि सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के लिए उपबन्ध कर दिया गया हो; और (2) जब कि संसद् ने खण्ड (7) (क) और (ख) के अधीन कोई विधि निर्मित कर दी हो। खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के परन्तुक द्वारा यह विहित किया गया है कि उक्त उपखण्ड की कोई बात किसी व्यक्ति के उस अधिकतम कालावधि से आगे निरोध को प्राधिकृत न करेगी जो खण्ड (7) के खण्ड (ख) के अधीन संसद्-निर्मित किसी विधि द्वारा विहित की गई हो। अतः यदि सम्पूर्ण खण्ड (4) का अध्ययन किया जाए तो उसकी अभिव्यक्त भाषा का अर्थ स्पष्टतः प्रकट हो जाता है। पहले उसमें निरोध का साधारण नियम अधिकथित है और उसके अधीन उसकी कालावधि तीन मास तक की हो सकती है और तत्पश्चात् उसमें

दो अपवाद विहित किए गए हैं अर्थात् (क) अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है बशर्ते कि सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की व्यवस्था कर दी गई हो; और (ख) जब कि खण्ड (7) (क) और (ख) के अधीन संसद् ने विधान कर दिया हो। उक्त दोनों ही दशाओं में निरोध की कालावधि को विचाराधीन विधि में उपबन्धित अधिकतम कालावधि से अधिक नहीं हो सकती है। अतः यह प्रकट होता है कि खण्ड (4) का उपखण्ड (क) संसदीय कानूनों तक ही सीमित नहीं है जब कि खण्ड (ख) संसद् द्वारा पारित अधिनियम को ही लागू होता है।

30. अब हम खण्ड (7) पर विचार करेंगे। उस खण्ड का उपखण्ड (क) निम्न प्रकार है —

"संसद् विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि —

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के उपबन्धों के अनुसार मन्त्रणा मण्डली (सलाहकार बोर्ड) की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा।"

हमारे समक्ष खण्ड (7) (क) के दो वैकल्पिक अर्थान्वयन प्रस्तुत किए गए हैं। विद्वान् महा न्यायवादी ने यह निवेदन किया कि खण्ड (4) और (7) को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और यदि इस प्रकार पढ़ा जाए तो उनसे अलग-अलग शक्तियां प्रकट होती हैं—(1) अधिकतम निरोध के लिए उपबन्ध करने वाली विधि बनाना और उसमें सलाहकार बोर्ड की बाबत उपबन्ध करना, और (2) अधिक लम्बे निरोध के लिए उपबन्ध करने वाली विधि बनाना और सलाहकार बोर्ड के लिए उसमें कोई उपबन्ध न करना। अतः उन्होंने यह तर्क दिया कि उक्त शक्तियां परस्पर स्वतन्त्र हैं और वैकल्पिक हैं और इस बात का प्रश्न ही नहीं उठता है कि खण्ड (7) (क) खण्ड (4) (क) का अपवाद है। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि खण्ड (7) (क) में प्रयुक्त 'विधि द्वारा विहित कर सकेगी पदावली से यह अभिप्रेत है कि वह उपखण्ड शक्ति प्रदान करने वाला उपबन्ध है जो संसद् को (1) वे परिस्थितियां विहित करने के लिए जिनमें, और (2) उन मामलों के प्रकार या प्रकारों को विहित करने की जिनमें किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है प्राधिकृत करता है। चूंकि अधिनियम द्वारा संसद् को दो कार्यों में से कोई भी कार्य करने की शक्ति दी गई है, अतः संसद् उक्त कार्यों में से कोई भी कार्य कर सकती है और इसलिए शब्द 'और' को इस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए कि उसका प्रयोग वियोजक के रूप में किया गया है [मैक्सवेल की कृति इण्टर प्रिटेशन ऑन स्टैट्यूट्स (11वां संस्करण) 229]। दूसरी ओर पिटीशनर की ओर से दलील यह दी गई कि खण्ड (4) (क) द्वारा यह रक्षोपाय विहित किया गया है कि ऐसे सभी मामलों में, जिनमें कि तीन मास की कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के लिए विधि के अधीन निरोध की व्यवस्था की गई है, सलाहकार बोर्ड का हस्तक्षेप आवश्यक है। एसा हस्तक्षेप केवल ऐसे मामलों में ही आवश्यक न होगा जिनमें कि संसद् ने खण्ड (7) (क) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करके विधि बनाई हो।

31. उक्त अर्थान्वियनों में से कौन-सा अर्थान्वियन ठीक है यह तय करने के लिए सबसे पहले यह विचार करना आवश्यक है कि खण्ड (4) (क) की प्रकृति और प्रविषय क्या है। उक्त खण्ड के अधीन कोई भी विधि, चाहे उसे सूची 1 की प्रविष्टि 9 के अधीन संसद् ने या चाहे सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन संसद् और राज्य विधानमण्डलों ने अधिनियमित किया हो, जब तक कि सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के लिए उपबन्ध नहीं कर देती है, तीन मास की कालावधि के लिए निरोध प्राधिकृत नहीं कर सकती है। इस प्रकार खण्ड (4) (क) केन्द्रीय और राज्य विधानमण्डलों को, जब कि वे उक्त प्रविष्टियों के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हैं, प्रदत्त विधायी शक्ति पर निर्बन्धन अधिकथित करता है। अतः स्थिति यह हुई कि यद्यपि संसद् और राज्य विधानमण्डल उक्त दो प्रविष्टियों में प्रगणित शीर्षों या विषयों में से किसी पर भी निरोध सम्बन्धी विधि बना सकते हैं, तथापि खण्ड (4) (क) प्रथमतः यह उपबन्धित करती है कि उक्त दोनों में से किसी के भी द्वारा पारित विधि तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध उपबन्धित नहीं कर सकती है। इसके अलावा उक्त खण्ड यह भी विहित करता है कि यदि ऐसी कोई विधि तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध उपबन्धित करती है तो ऐसा वह तभी कर सकती है जब कि उसमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप सम्बन्धी रक्षोपाय की व्यवस्था कर दी गई हो, क्योंकि संविधान द्वारा यह अपेक्षा की गई है कि उक्त सलाहकार बोर्ड में ऐसे व्यक्ति सम्मिलित होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या होने के लिए अर्हित हों।

32. जब कि खण्ड (4) का उपखण्ड (क) संसद् और विधानमण्डल दोनों ही के द्वारा अधिनियमित विधान को लागू होता है, उपखण्ड (ख) केवल ऐसी विधियों को ही लागू होता है जिसे संसद् ने अधिनियमित किया हो। उपखण्ड (ख) द्वारा यह उपबन्ध किया गया है कि उपखण्ड (क) के अधीन संसद् की शक्ति पर लगाया गया निर्बन्धन खण्ड (7) (क) और (ख) के अधीन संसद् द्वारा अधिनियमित विधि को लागू न होगा। बोर्ड के हस्तक्षेप की व्यवस्था करके अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए विधि बनाने या बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना ही अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए विधि बनाने की बाबत यदि संसद् की वैकल्पिक शक्ति का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है तो खण्ड (4) (क), खण्ड (7) (क) के साथ पठित खण्ड (4) (ख) से पूर्णतः बेअसर हो जाता है। दूसरे शब्दों में ऐसे अर्थान्वियन का मतलब यह होगा कि यद्यपि संविधान निर्माताओं ने निरोध की अधिक लम्बी कालावधि के लिए उपबन्ध करने वाली विधि के विरुद्ध रक्षोपाय अधिकथित कर दिए हैं तथापि इसके साथ ही उन्होंने उक्त रक्षोपायों को यह उपबन्धित करके बेअसर कर दिया है कि संसद् सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना भी खण्ड (7) (क) के साथ पठित खण्ड (4) (ख) के अधीन विधि बना कर अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए विधान कर सकती है। निश्चय ही ऐसा अर्थान्वियन, जो किसी उपबन्ध के एक भाग का अर्थान्वियन करते हुए उसी उपबन्ध के अन्य भाग को बेअसर करता हो, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। साथ ही यदि खण्ड (7) (क) के साथ पठित खण्ड (4) (ख) का आशय खण्ड (4) (क) पर अध्यारोही होने का होता और निरोध की अधिक लम्बी कालावधि के लिए विधि द्वारा विहित रक्षोपायों पर भी अध्यारोही होने का होता तो संविधान निर्माता निश्चय ही खण्ड (4) (क) को ऐसी विधियों तक ही सीमित रखते जिनका अधिनियमन राज्य विधानमण्डलों ने किया होता और उसे संसद् द्वारा निर्मित विधि को लागू न करते। उस दशा में संविधान

निर्माताओं ने खण्ड (4) (ख) और खण्ड (7) (क) में निम्नलिखित अभिव्यक्ति का ही प्रयोग किया होता : 'खण्ड (4) (क) में कोई भी बात संसद् द्वारा निर्मित निवारक निरोध सम्बन्धी विधि को लागू न होगी।' यदि संसद् की वैकल्पिक शक्ति के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाता है तो इसका अर्थ यह होता है कि यदि राज्य विधानमण्डल निरोध सम्बन्धी कोई विधि बनाते हैं तो उसमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की व्यवस्था होना अनिवार्य है। किन्तु यदि ऐसी कोई विधि संसद् बनाती है और उसमें अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए उपबन्ध भी किया जाता है तो भी उसमें ऐसे सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं की गई है। संविधान निर्माताओं का ऐसा आशय रहा हो, यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है। संविधान निर्माताओं का आशय निरोध सम्बन्धी ऐसी विधियों में, चाहे उसे संसद् ने बनाया हो या चाहे राज्य विधानमण्डल ने, और जिसमें तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध की व्यवस्था की गई हो, निष्पक्ष और स्वतन्त्र निकाय के हस्तक्षेप के लिए उपबन्ध करना आवश्यक है। खण्ड (4) और (7) के विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि संविधान निर्माताओं ने यह उपबन्ध किया है कि (क) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली विधि में तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरोध उपबन्धित नहीं किया जाना चाहिए; (ख) किन्तु फिर भी यदि ऐसी कोई विधि तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए उपबन्ध करती है तो उसमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए; और (ग) एसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब कि कुछ मामलों में संसद् को ही ऐसी विधि बनाने की शक्ति दी जानी चाहिए जिसमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना भी अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए उपबन्ध किया जाए। खण्ड (4) और खण्ड (7) की भाषा पर यदि सम्यक्तः विचार किया जाए तो संसद् की स्वतंत्र या वैकल्पिक शक्ति का सिद्धांत उचित साबित नहीं होता है और उसे प्रथमतः इस कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उक्त दोनों खण्डों में प्रयुक्त भाषा के अर्थान्वयन से ऐसा कोई आशय प्रकट नहीं होता है और द्वितीयतः इसलिए कि यदि अर्थान्वयन यह किया जाए कि खण्ड (7) (क) और खण्ड (4) (ख) को एक साथ पढ़ने से खण्ड (7) (क) खण्ड (4) (क) का अपवाद साबित होता है, तो दोनों ही खण्डों के बीच सामन्जस्य स्थापित हो जाता है और उक्त दोनों खण्डों के अधिनियमन का सही आशय भी स्पष्ट हो जाता है।

33. अगला प्रश्न यह है कि खण्ड (7) (क) के अधीन ऐसी कौन-सी विधि बनाई जा सकती है जिसके अधीन तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए विधान किया गया हो और साथ ही सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की बाबत कोई व्यवस्था न की गई हो। ऐसी विधि संसद् ही बना सकती है और ऐसी विधि में 'किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में' किसी व्यक्ति को खण्ड (4) द्वारा यथाविहित तीन मास के अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है उनका उल्लेख होना चाहिए और उसमें सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करने की अपेक्षा से भी बचा जा सकता है। 'किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में' अभिव्यक्ति **गोपालन वाले मामले** [1] में आपत्तिग्रस्त थी। इस प्रश्न की बाबत न्यायाधिपतियों के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया

---

[1] 1950 एस० सी० आर० 88.

था और उसमें बहुमत तथा अल्पमत का निर्णय अलग-अलग था। लगभग समान रूप में ही उक्त विवाद हमारे समक्ष भी उठाया गया है, अर्थात्, एक पक्ष का कहना है कि यदि उक्त दो प्रविष्टियों में उल्लिखित शीर्षों या विषयों का, जिन पर कि निरोध सम्बन्धी विधि बनाई जा सकती है, उल्लेख कर दिया जाता है तो खण्ड (7) (क) की अपेक्षाओं का पर्याप्त रूप से अनुपालन हो जाता है और दूसरे पक्ष का कहना यह था कि उक्त अभिव्यक्ति का ऐसा अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है। उक्त विवाद तय करने के लिए मोटे तौर से एक ही विचारणीय विषय सामने आता है और वह यह कि खण्ड (7) (क) में उल्लिखित मामलों के प्रकार और परिस्थितियां उक्त दो प्रविष्टियों में उल्लिखित विषयों में से, जिनकी बाबत निरोध सम्बन्धी विधि बनाई जा सकती है, एक या अधिक तक ही सीमित नहीं हैं। यदि यह दलील ठीक है कि यदि उक्त विषयों को प्रगणित कर दिया जाता है तो खण्ड (7) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाती है तो संसदीय विधान द्वारा उक्त दो प्रविष्टियों के सभी को छः विषयों को प्रगणित किया जा सकता है और अधिक लम्बी कालावधि के लिए, जो उक्त विषयों में से सभी से सम्बद्ध हो, उपबन्ध किया जा सकता है। निवारक निरोध अधिनियम, 1950 और आक्षेपित अधिनियम दोनों में ही आवश्यक प्रदाय और सेवाओं के बनाए रखने के विषय को अपवादित कर दिया गया है। किन्तु खण्ड (7) (क) में उस बाबत कोई निर्बन्धित भाषा प्रयुक्त नहीं की गई है अतः उनके लिए भी ऐसा करना आवश्यक नहीं था। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि संसद् किसी विधि में उक्त दो प्रविष्टियों में उल्लिखित शीर्षों और विषयों का उल्लेख कर देती है तो वह ऐसी विधि द्वारा सलाहकार बोर्ड से छुटकारा पा सकती है। यदि ऐसा किया जाता है तो खण्ड (4) (क) में उपबन्धित रक्षोपाय पूर्णतः निष्फल हो जाता है। यदि ऐसा ही आशय होता तो खण्ड (7) (क) में इतनी व्यापक भाषा का प्रयोग न किया जाता और इतना ही उपबन्धित कर देना पर्याप्त होता कि खण्ड (4) (क) की कोई भी बात संसद् द्वारा निर्मित ऐसी विधि को लागू न होगी जिसमें दो प्रविष्टियों में उल्लिखित सभी विषय या उनमें से एक या अधिक का उल्लेख कर दिया गया हो। संविधान निर्माताओं ने खण्ड (7) (क) में यह उपबन्धित करना आवश्यक क्यों समझा कि ऐसी विधि में परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों का उल्लेख होना चाहिए। ऐसी अभिव्यक्ति के विद्यमान होने से और इस बाबत उपबन्ध होने से कि ऐसी विधि संसद् ही बना सकती है, यही प्रकट होता है कि खण्ड (7) (क), खण्ड (4) (क) का अपवाद है और ऐसे अपवाद के विद्यमान होते हुए संसद् ही ऐसी विधि निर्मित कर सकती है जिसमें असाधारण परिस्थितियों या असाधारण प्रकार के मामलों का उल्लेख हो। यदि प्रविष्टियों में के शीर्षों के उल्लेख मात्र से विहित परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों का उल्लेख हो जाता है तो संसद् को ऐसी विधि में अत्यन्त सामान्य से लेकर अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों एवं मामलों के प्रकारों से, न कि केवल उनमें से ऐसी परिस्थितियों एवं प्रकारों से, हो जाता है जिनमें खण्ड (4) (क) द्वारा अपेक्षित व्यवहार से भिन्न व्यवहार अपेक्षित है। ऐसी दशा में खण्ड (4) (क) निष्फल हो जाएगा क्योंकि संसद् प्रविष्टियों में उल्लिखित शीर्षों या विषयों का अक्षरशः उल्लेख कर के खण्ड (4) (क) की अपेक्षाओं से छुटकारा पा सकती है। क्या खण्ड (4) (क) के अधिनियमन का यह आशय हो सकता है ? ऐसा आशय कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि तीन मास से अधिक लम्बी कालावधि के लिए वैयक्तिक स्वाधीनता से वंचन के लिए खण्ड (4) (क) के अनुसार गम्भीरतम कार्यपालिक कार्यवाही के विरूद्ध निष्पक्ष निकाय के हस्तक्षेप का रक्षोपाय अपेक्षित है।

1973(4) eILR(PAT) SC 1

34. सूची 1 और सूची 3 में की दो प्रविष्टियों के अधीन अनुज्ञात विधान के शीर्षों के अक्षरशः प्रगणन की समानता परिस्थितियों और प्रकार या प्रकारों के मामलों से करने में कठिनाई यह होती है कि यद्यपि उन व्यक्तियों के क्रिया-कलापों के, जिन्हें निरुद्ध करना आवश्यक समझा जाता है, तत्समय विद्यमान स्थिति के आधार पर, प्रभाव की मात्रा में अन्तर हो सकता है, तथापि उनकी गम्भीरता और प्रभाव की मात्रा के अनपेक्षतः, वे सभी इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध हो जाएंगे कि वे, खण्ड (7) (क) के अधीन बनाई गई विधि की दृष्टि से समान व्यवहार के योग्य होंगे। ऐसे मामले में ऐसे क्रिया-कलापों, जिनकी बाबत सलाहकार बोर्ड द्वारा उपलब्ध रक्षोपायों से वंचन न्यायोचित नहीं होगा, और उन क्रिया-कलापों के लिए, जिन में ऐसा वंचन आवश्यक है, समान बर्ताव विहित हो जाएगा और इसका परिणाम यह होगा कि सभी प्रकार के क्रिया-कलापों और सभी परिस्थितियों के सम्बन्ध में संसद् सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप द्वारा उपलब्ध रक्षोपायों से वंचित करने के लिए समर्थ हो जाएगी। उस दशा में खण्ड (4) (क) के विद्यमान होने का क्या लाभ होगा जबकि उसकी अपेक्षाओं से ऐसी विधि द्वारा बचा जा सकता हो जिसमें उक्त दो प्रविष्टियों में से कुछ विषयों का उल्लेख मात्र कर दिया जाता है। **गोपालन वाले मामले** ([1]) में जैसा कि न्यायाधिपति महाजन में कहा है, खण्ड (4) और खण्ड (7) की भाषा से यह दर्शित होता है कि उनके अन्तर्गत तीन प्रकार की परिस्थितिय आती हैं: (1) एक वह जब कि प्रश्नगत प्रक्रिया-कलाप और वे व्यक्ति जो कि ऐसे क्रिया-कलाप कर सकते हैं, यद्यपि प्रविष्टियों में प्रगणित विषयों से सम्बद्ध हैं तथापि उनकी प्रकृति और परिणाम ऐसे हैं कि तीन मास के निरोध से स्थिति काबू में आ सकती है; (2) दूसरी वह जबकि क्रिया-कलापों और उन्हें करने वाले सम्भावित व्यक्तियों की प्रकृति और परिणाम ऐसे हों कि निरोध की अधिक लम्बी कालावधि अपेक्षित हो किन्तु ऐसी अपेक्षा की पूर्ति सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप से ही हो सकती हो; और (3) तीसरी बात जबकि क्रिया-कलापों और उन्हें करने वाले सम्भावित व्यक्तियों की प्रकृति और परिणाम ऐसे हों कि उनके क्रिया-कलापों से जो स्थिति उत्पन्न हो, जिसमें न केवल किसी लम्बी कालावधि का निरोध ही अपेक्षित हो वरन् सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की छूट भी अपेक्षित हो। ऐसी गम्भीर आपात में, जब कि देश या उसके किसी भाग की सुरक्षा खतरे में हो, उदाहरणार्थ जब कि किसी लम्बी कालावधि के लिए न केवल निरोध ही आवश्यक हो वरन् सलाहकार बोर्ड का हस्तक्षेप भी, जिसे महत्वपूर्ण प्रकृति की जानकारी देना अनिवार्य हो जाता है, देश या समाज की सुरक्षा के प्रतिकूल होने के अलावा बहुत बोझिल समझा जाए। ऐसी स्थितियां न केवल उन मामलों में ही उत्पन्न होंगी जिनमें राष्ट्र या राष्ट्र के किसी भाग या भागों की सुरक्षा ही प्रभावित होती है वरन् वे स्थितियां उक्त प्रविष्टियों में प्रगणित शेष विषयों के सम्बन्ध में भी उत्पन्न हो सकती हैं। आवश्यक प्रदायों और सेवाओं का किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में, नष्ट किया जाना उसी प्रकार खतरनाक हो सकता है जिस प्रकार कि वे किया-कलाप जो राज्य और/या लोक-व्यवस्था की सुरक्षा को खतरे में डालते हैं।

35. साधारणतया परिस्थितियों से अभिप्रेत है ऐसी स्थितियां या घटनाएं जो सम्बन्धित व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के क्रिया-कलापों से असम्बद्ध हों; उदाहरणार्थ, बलवे, अव्यवस्था, धार्मिक, वंशज, प्रादेशिक भाषाई तनाव या ऐसे ही अन्य उपद्रव,

---

([1]) (1950) एस० सी आर० 88.

जिनके पहले से ही विद्यमान होने से देश या उसके किसी भाग या लोक व्यवस्था की सुरक्षा को प्रभावित करने वाले प्रश्नगत क्रिया-कलापों के प्रतिकूल प्रभाव में वृद्धि हो जाती है। दूसरी ओर 'प्रकार या प्रकारों के मामलों' का सम्बन्ध व्यक्तियों के समूह या समूहों से है, जो अपने क्रिया-कलापों की प्रकृति के कारण किसी ऐसे एक समूह या अनेक समूहों के अन्तर्गत आते हैं जिनका उद्देश्य समान होता है। विधायी प्रविष्टियों में उपवर्णित विषयों या शीर्षों के उल्लेख का आशय उन सीमाओं को उपबन्धित करना है जिनके अन्दर विधानमण्डल निरोध सम्बन्धी विधि बना सकते हैं। इन प्रविष्टियों और खण्ड (7) (क) के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं। प्रविष्टियों का उद्देश्य उन शीर्षों का उल्लेख करना है जिनकी बाबत विधान किया जा सकता है और खण्ड (7) (क) का उद्देश्य साधारण और असाधारण परिस्थितियों के बीच अन्तर स्थापित करना है और उसका उद्देश्य खण्ड (4) (क) द्वारा उपबन्धित अज्ञापक रक्षोपाय का असाधारण परिस्थितियों में लागू न होने देना भी है। प्रविष्टियों में से विधान के विषयों या शीर्षों के उद्धरण मात्र से ऐसी परिस्थितियां या मामलों के प्रकार विहित नहीं हो जाते हैं जिन्हें उक्त स्वतंत्र निकाय के हस्तक्षेप का रक्षोपाय लागू नहीं होता हो। खण्ड (7) (क) के अधीन वाली विधि, यदि उसकी तुलना खण्ड (4) (क) के अधीन निर्मित विधि से की जाए, अधिक कठोर विधि है और उसके बारे में उपधारणा यह की जानी चाहिए कि ऐसी कठोर विधि अभिव्यक्त रूप से और विहित निबन्धनों के अनुसार असाधारण परिस्थितियों में और असाधारण क्रिया-कलापों को ही लागू होगी।

36. यदि खण्ड (7) (क) का अर्थान्वयन यह किया जाए कि उसके अधीन उन विषयों का प्रगणन मात्र भी अभिप्रेत है जिनके सम्बन्ध में निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की शक्ति दी गई है, तो उन सभी विषयों का अक्षरशः उपवर्णन किया जा सकता है किन्तु ऐसा करने पर खण्ड (4) (क) निष्फल हो जाएगा। आवश्यक प्रदायों और सेवाओं के बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य, अर्थात् कानून द्वारा विहित मात्रा से अधिक मात्रा में नियन्त्रित या राशन की खाद्य सामग्री कब्जे में होना, बर्ताव की दृष्टि से भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य के समान हो जाएंगे। दूसरी ओर आपात काल में प्रदायों और संचार को क्षतिग्रस्त करने वाला ऐसा कार्य, जो आवश्यक प्रदायों और सेवाओं के बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, उस कार्य के समान हो जाएगा, जो किसी एक परिक्षेत्र में या समाज के किसी एक प्रभाग में लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है। इस प्रकार खण्ड (7) (क) संसद् से यह अपेक्षा करता है कि वह सोच-विचार कर विशिष्ट प्रकार की स्थितियों और मामलों के प्रकारों को विहित करे, जिनमें कि कठोर विधि अपेक्षित हो और जिनमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप से मुक्ति इस आधार पर प्राप्त की जा सके कि ऐसा हस्तक्षेप ऐसी असाधारण परिस्थितियों में और खतरनाक व्यक्तियों के मामलों में बहुत बोझिल या अहितकर होगा। यदि खण्ड (4) (क) और खण्ड (7) (क) को एक साथ पढ़ा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि

सलाहकार बोर्ड जैसे स्वतन्त्र निकाय के हस्तक्षेप की बाबत उपबन्ध करने में संविधान निर्माताओं का आशय यह था कि वे खण्ड उस अधिकारिता के विरुद्ध एक आवश्यक रक्षोपाय होंगे, जो प्रधानतः सन्देह और आशंकाओं पर आधारित है और जिसकी उपेक्षा खण्ड (7)(क) के अधीन बनाई गई विधि में विनिर्दिष्टतः विहित असाधारण परिस्थितियों में और खतरनाक व्यक्तियों और उनके आशंकित क्रिया-कलापों के बारे में ही की जा सकती है। इस दृष्टिकोण से उक्त खण्ड में प्रयुक्त 'और' शब्द का अर्थ यही लगाया जाना चाहिए कि उसका प्रयोग एक साधारण संयोजक के रूप में किया गया है। उक्त खण्ड के संदर्भ से भी यह प्रकट नहीं होता है कि उसका प्रयोग किसी विपरीत अर्थ में किया गया है। वस्तुतः 'और' शब्द का प्रयोग उसी रूप में किया गया है जिसमें कि सामान्यतः उसे समझा जाता है और उसके अधीन संसद् से यह अपेक्षा की गई है कि वह उन सभी परिस्थितियों और मामलों के प्रकारों, दोनों का ही, उल्लेख करे, जिनमें कि बोर्ड द्वारा विचारण से छूट पाई जा सकती हो।

37. **गोपालन वाले मामले** (1) में न्यायाधिपति पतंजली शास्त्री (जैसे कि वह उस समय थे) ने यह मत व्यक्त किया है कि निवारक निरोध जैसे विषय में, जो स्वाभाविक रूप से कतिपय आशंकित कार्यों के किए जाने की सम्भावना पर आधारित होता संसद् के लिए यह असम्भव हो जाता है कि वह उन परिस्थितियों या मामलों के प्रकारों का, जिनकी बाबत खण्ड (7)(क) के अधीन विधि बनाई जा सकती है, सविस्तार उल्लेख करे। जो कठिनाई न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री के समक्ष उत्पन्न हुई थी उसका उत्तर न्यायाधिपति फज़ल अली ने एक स्पष्ट उदाहरण के रूप में दि ब्रिटिश डिफेंस आँफ रेल्म्स रेगूलेशन्स, 1939 के विनियम 18 के प्रति निदश किया है जिसमें कि अधिक गम्भीर प्रकार की परिस्थितियों और क्रिया-कलापों को अन्य परिस्थितियों और क्रिया-कलापों से अलग किया गया है। विनियम 18-बी में निम्नलिखित उन मामलों के प्रकारों का उल्लेख हुआ है जिनमें कि सेक्रेटरी आँफ स्टेट निवारक निरोध के लिए आदेश कर सकता था—

(1) यदि सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त कारण हो कि कोई व्यक्ति शत्रु देशीय है या शत्रु से सम्बन्धित है;

(2) यदि सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त कारण हो कि किसी व्यक्ति का ऐसा कार्यों से अभी हाल ही में सम्बन्ध रहा है जो लोक सुरक्षा या साम्राज्य की रक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले हैं अथवा वह ऐसे कार्यों की तैयारी या उकसाने से सम्बद्ध है;

(3) यदि उसके पास यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण हो कि कोई व्यक्ति उल्लिखित संगठनों में से किसी का सदस्य रहा है या होने वाला है, या उसने ऐसे किसी संगठन के उद्देश्य को आगे बढ़ाने वाले कार्यों में भाग लिया है या भाग ले रहा है; और

(1) 1950 एस० सी० आर० 88.

1973(4) eILR(PAT) SC 1

(4) यदि उसके पास यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण हो कि किसी क्षेत्र में तत्समय रहने वाले किसी व्यक्ति के हाल ही के आचरण या ऐसे व्यक्ति द्वारा हाल ही में ऐसे शब्द लिखे या बोले गए हैं, जिनसे शत्रु से सहानुभूति दर्शित होती है या उनसे यह दर्शित होता है कि ऐसा व्यक्ति ऐसे शत्रु की सहायता करने वाला है।"

न्यायाधिपति महाजन (जैसे कि वे उस समय थे) ने भी उसी प्रकार डिफेंन्स ऑफ इण्डिया रूल्स, 1939 के नियम 34(6) में उपवर्णित प्रतिकूल क्रियाकलापों के वर्गीकरण के प्रति निर्देश किया है। कार्यों का ऐसा वर्गीकरण भारत रक्षा नियम, 1971 के नियम 36(6) में भी किया गया है। पश्चिमी बंगाल (हिंसात्मक क्रियाकलापों का निवारण) अधिनियम 1970 (1970 का 19) की धारा 3(2) में भी कतिपय ऐसे क्रियाकलापों का वर्गीकरण किया गया है जो 'राज्य की सुरक्षा पर या लोक व्यवस्था बनाए रखन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी रीति में कार्य करते हुए' पद के अन्तर्गत आते हैं। उक्त उपबन्ध इस प्रकार है —

*"(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए 'राज्य की सुरक्षा या लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली किसी रीति में कार्य करना' पद से अभिप्रेत है —

(क) किसी व्यक्ति को बोले गए या लिखित शब्दों द्वारा या संकतों द्वारा या दृश्यरुपणों द्वारा या अन्यथा किसी घातक हथियार के प्रयोग द्वारा निम्नलिखित कार्य करने के लिए उकसाना या स्वयं ऐसे घातक हथियारों के प्रयोग द्वारा निम्नलिखित कार्य करना—

(i) ऐसे हेतुक या विचार धारा की, जिसकी अभिवृद्धि या प्रचार राज्य की सुरक्षा या लोक-व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है या डाल सकना सम्भाव्य है, अभिवृद्धि या प्रचार करना; या

(ii) भारत में विधि द्वारा स्थापित सरकार को उलटने या आतंकित करना;

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"(2) For the purposes of sub-section (i) the expression 'acting in any manner prejudicial to the security of the State or the maintenance of public order' means—

(a) using, or instigating any person by words, either spoken or written, or by signs or by visible representations or otherwise, to use, any lethal weapon—

(i) to promote, or propagate any cause or ideology, the promotion or propagation of which affects, or is likely to affect adversely the security of the State or the maintenance of public order; or

(ii) to overthrow or to overawe the Government established by law in India;

1973(4) eILR(PAT) SC 1

(ख) सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी या सरकार के स्वामित्वाधीन या नियन्त्रणाधीन किसी निकाय या किसी विश्वविद्यालय या किसी अन्य शैक्षिक संस्था की सम्पत्ति को या किसी सार्वजनिक भवन को अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 425 के अन्तर्गत ऐसी रिष्टि पहुंचाना, जिससे कि लोक व्यवस्था विक्षुब्ध होती है या होनी संभाव्य है; या

(ग) भारत के राष्ट्रीय झण्डे का या सार्वजनिक समादर की किसी वस्तु का, चाहे उसे विकृत करके या चाहे क्षति पहुंचा कर या चाहे जला कर या चाहे दूषित करके या चाहे नष्ट करके या अन्यथा, अपमान करना, या किसी व्यक्ति को ऐसा करने के लिए उकसाना;

* * * *

(घ) मृत्यु से या आजीवन कारावास से या सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दण्डनीय कोई अपराध अथवा आयुद्ध अधिनियम, 1959 या विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 के अधीन कोई अपराध करना या किसी व्यक्ति को ऐसा अपराध करने के लिए उकसाना, जबकि ऐसे अपराध के किए जाने से लोक व्यवस्था विक्षुब्ध होती हो या होनी सम्भाव्य हो; या

(ङ) दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 110 के खण्ड (क) से लेकर (च) तक में निर्दिष्ट व्यक्ति द्वारा ऐसा कोई अपराध किया जाना जो कारावास से दण्डनीय है और जिससे लोक-व्यवस्था विक्षुब्ध होती है या होना सम्भाव्य है।"

(b) committing mischief, within the meaning of section 425 of the Indian Penal Code, by fire or any explosive substance on any property of Government or any local authority or any corporation owned or controlled by Government or any University or other educational institution or on any public building, where the commission of such mischief disturbs, or is likely to distarb, public order; or

(c) causing insult of the Indian National Flag or to any other object of public veneration whether by mutilating, damaging, burning, defiling, destroying or otherwise, or instigating any person to do so;

(d) committing, or instigating any person to commit, any offence punishable with death or imprisonment for life or imprisonment for a term extending to seven years or more or any offence under the Arms Act, 1959 or the Explosive Substances Act, 1908, where the commission of such offence distrubs, or is likely to disturb, public order; or

(e) in the case of a person referred to in clause (a) to (f) of Section 110 of the Code of Criminal Procedure, 1898, Committing

1973(4) eILR(PAT) SC 1

38. उक्त उदाहरणों से उन विनिर्दिष्ट परिस्थितियों और प्रकारों के मामलों के, जिनमें सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप की उपेक्षा की जा सकती है, विहित करने में आने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों का भय पर्याप्त रूप से दूर हो जाता है ।

39. हमारे विचार से अनुच्छेद 22 के खण्ड (4)(क) द्वारा एक नियम प्रतिपादित किया गया है जिसका खण्ड (7) (क) के साथ पठित खण्ड (4)(क) एक अपवाद है । इस दृष्टिकोण से खण्ड (7) (क) का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो वह निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की संसद् की शक्ति इस प्रकार निर्बन्धित करता है कि वह खण्ड (4) (क) में अधिकथित नियम की उपेक्षा कर सकती है और सलाहकार बोर्ड को मामले निर्देशित करने से मुक्ति पा सकती है, बशर्ते कि वह संबंधित विधि में उन परिस्थितियों का, जिनमें और मामलों के उन प्रकार या प्रकारों का उल्लेख कर दे जिनमें खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के उपबन्धों के अनुसार किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना भी तीन मास की कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है । **गोपालन वाले मामले** (1) में बहुमत का निर्णय दने वाले आदरणीय एवं विद्वान् न्यायाधिपतियों के मत से, जो उन्होंने अनुच्छद 22 के खण्ड (4)(ख) और खण्ड (7) (क) के अर्थान्वयन की बाबत व्यक्त किया है, हम सहमत नहीं हैं । हमारे विचार से अधिनियम की धारा 17-क से खण्ड (7) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई है और इसलिए उसे उक्त खण्ड के प्रतिकूल होने के आधार पर अवैध घोषित किया जाना चाहिए ।

40. **गोपालन वाले मामले** (1) में न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 22 स्वयं में एक पूर्ण संहिता है और इसलिए निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के लिए अनुच्छेद 19, 14 और 21 की अपेक्षाओं का अनुपालन आवश्यक नहीं है । इसके प्रतिकूल न्यायाधिपति फज़ल अली का मत यह था कि निवारक निरोध अनुच्छेद 19(1)(घ) द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन करता है और यह कि निवारक निरोध की बाबत उपबन्ध करने वाली विधि को ऐसे न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन होना चाहिए जो उक्त अनुच्छेद के खण्ड (5) के अधीन उल्लिखित है । **आर० सी० कूपर बनाम भारत संघ** (2) में गोपालन वाले मामले में व्यक्त बहुमत को अननुमोदित किया गया है और इसलिए वह अब मान्य विनिश्चय नहीं रह गया है । यद्यपि कूपर वाला मामला अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 31 के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में है, तथापि संविधान के विभिन्न उपबन्ध द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों के अर्थान्वयन

Committing any offence punishable with imprisonment where the Commisson of such offence disturbs, or is likely to disturb public order."

(1) 1950 एस० सी० आर० 88.

(2) (1970) 3 एस० सी० आर० 530.

1973(4) eILR(PAT) SC 1

की बाबत उक्त मामले में जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उसके द्वारा यही अभिनिर्धारित किया गया है कि गोपालन वाले मामले में बहुमत का दृष्टिकोण ठीक नहीं है। अर्थान्वयन के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए पिटीशनर और मध्यक्षेपी के काउन्सेल ने भारत रक्षा अधिनियम की धारा 6(6)(घ) द्वारा यथासंशोधित अधिनियम की धारा 13 की बाबत यह निवेदन किया है कि उससे अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है और भारत रक्षा अधिनियम की धारा 6(6)(घ) के अधिनियमन से पूर्व यथाविद्यमान अधिनियम की धारा 3, 8, 9, 10, 11 और 12 पर उन्होंने इस आधार पर आपत्ति की है कि वे उपबन्ध शून्य हैं और तत्पश्चात् की गई आपात घोषणा और धारा 6(6)(घ) के अधिनियमन से उन उपबन्धों को, जो पहले से ही शून्य हैं, जीवन प्राप्त नहीं हो सकता है। काउन्सेल ने यह भी कहा कि संशोधित धारा 13 और धारा 17-क (2)(घ) द्वारा यथाविहित निरोध की अधिकतम कालावधि से अनुच्छेद 22(7)(ख) की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हुई है क्योंकि उसमें संसद् ने जो अधिकतम कालावधि नियत की है वह तीन वर्ष या भारत रक्षा अधिनियम के पर्यवसान तक, इनमें से जो भी पश्चात्वर्ती है, की है। उक्त पर्यवसान तक की कालावधि एक अनिश्चित तथ्य है, क्योंकि कोई भी यह नहीं बता सकता है कि कब आपात समाप्त होगी। किन्तु अधिनियम की धारा 17-क की बाबत हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है उसके आधार पर हमारे लिए उक्त धाराओं पर विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि, जैसी कि पद्धति इस न्यायालय की रही है, उसके अनुसार, हम केवल इतना ही विनिश्चित करते हैं जितना कि संबंधित विनिश्चय के लिए आवश्यक होता है। अतः काउन्सेल द्वारा उठाई गई उक्त आपत्तियों की बाबत हम अपना कोई मत व्यक्त नहीं कर रहे हैं। हमारे लिए इतना ही घोषित कर देना पर्याप्त है कि धारा 17-क अनुच्छेद 22 के खण्ड (7)(क) में अधिकथित अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करती है, अतः वह अविधिमान्य है।

41. परिणामस्वरूप, पिटीशन सफल होते हैं और हम यह निदेश देते हैं कि पिटीशनर को उनके निरोध से तुरन्त मुक्त कर दिया जाए।

रा० पिटीशन मंजूर किए गए।

———